शान्ति-सन्देश

आखिल भारतीय संतमत-सत्संग का प्रमुख मासिक पत्र
अप्रैल, २०१४ ई०

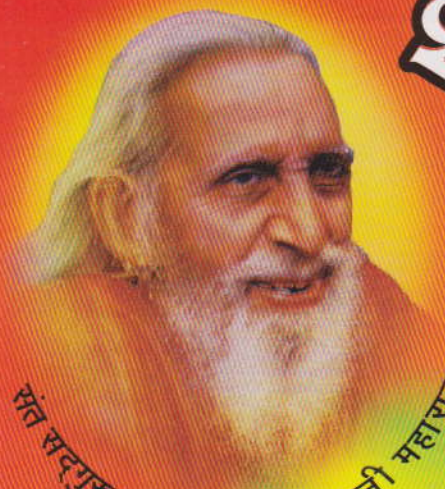

संत सद्गुरु महर्षि मँहीं परमहंसजी महाराज

पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज

महर्षि मँहीं आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर
बिहार (भारत), पिन–812003

विषय-सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	सूक्ति-कण	१
२.	संतवाणी–संत दूलनदासजी महाराज की वाणी	२
३.	सत्संग-सुधा–संत सद्गुरु महर्षि मँहीं परमहंसजी महाराज	३
४.	प्रवचन-पीयूष–पूज्यपाद महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज	७
५.	गुरु-वचन–पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज	१०
८.	महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज की वाणी	१५
९.	मन और वाणी का संयम करे–भगवान बुद्ध	१६
१०.	मोक्ष के लक्षण–समर्थ स्वामी रामदासजी महाराज	१७
११.	निरन्तर सत्संग करना चाहिए– श्री रामकृष्ण परमहंसजी महाराज	१९
१२.	ईश्वर में विश्वास करो–स्वामी रामतीर्थजी महाराज	२०
१३.	असली घर प्रभु का धाम–भक्तराज श्रीयादवजी महाराज	२२
१४.	संतमत-सार	२३
१५.	सम्पादकीय	२४

संत सद्गुरु महर्षि मँहीं परमहंसजी महाराज की १३०वीं पावन जयन्ती

दिनांक–१३ मई, २०१४ ई० (मंगलवार)

संतमत के सभी भाई-बहनों को ज्ञात हो कि परमाराध्य संत सद्गुरु महर्षि मँहीं परमहंसजी महाराज की १३०वीं पावन जयन्ती १३ मई, २०१४ ई० को है। इस परम पावन अवसर पर सभी सत्संगी भाई-बहनें अपने-अपने क्षेत्र के सत्संग मंदिरों में अथवा जहाँ सत्संग मंदिर नहीं हो, वहाँ के सत्संगीगण किसी सार्वजनिक स्थान पर एकत्र होकर परमाराध्य गुरुदेव की जयन्ती मनाएँ। गुरु-पूजा के रूप में सिंहासन पर अर्पित राशि परमाराध्य गुरुदेव की सिद्धपीठ तपोभूमि महर्षि मँहीं आश्रम कुप्पाघाट, भागलपुर की सुव्यवस्था एवं विभिन्न विकास कार्यों के लिए भेजने की कृपा करें।

कार्यक्रम : प्रातः ५ बजे से प्रभातफेरी, ६ बजे से स्तुति-विनती एवं सत्संग, ८ बजे से गुरु-निवास में पुष्पांजलि, ११ बजे से सामूहिक भण्डारा तथा अपराह्नकाल २ बजे से भजन-कीर्तन एवं स्तुति-विनती के पश्चात् ग्रंथ-पाठ तथा परमाराध्य गुरु महाराज के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं उनके सदुपदेशों पर प्रकाश।

निवेदक–अरुण कुमार अग्रवाल (महामंत्री), अखिल भारतीय संतमत-सत्संग महासभा

महापरिनिर्वाण-दिवस पर पक्ष-ध्यान-साधना-शिविर का आयोजन

स्थान : महर्षि मँहीं आश्रम कुप्पाघाट, भागलपुर-३ (बिहार)

दिनांक : २५ मई २०१४ ई० से ०८ जून २०१४ ई० तक

साधक संख्या : १०१ (केवल पुरुष) व्यवस्था शुल्क : १००१ रुपये

परमाराध्य संत सद्गुरु महर्षि मँहीं परमहंसजी महाराज का महापरिनिर्वाण-दिवस २९ मई २०१४ ई० एवं पूज्यपाद महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज का महापरिनिर्वाण दिवस ४ जून २०१४ ई० को है। इस अवसर पर महर्षि मँहीं आश्रम कुप्पाघाट, भागलपुर में दिनांक २५ मई २०१४ ई० से ०८ जून २०१४ ई० तक ध्यानाभ्यास का कार्यक्रम रखा गया है। इस ध्यान-साधना-शिविर में भाग लेने हेतु अपना स्थान सुरक्षित करवा लें तथा २४ मई २०१४ ई० की शाम तक अपने दैनिक व्यवहार के सामानों के साथ कुप्पाघाट आश्रम पहुँच जाएँ।

निवेदक : व्यवस्थापक, महर्षि मँहीं आश्रम कुप्पाघाट, भागलपुर

शान्ति-सन्देश

अखिल भारतीय संतमत-सत्संग का प्रमुख मासिक पत्र

वर्ष ६३ अंक ०१

चैत-वैशाख, २०७१ वि० सं०

अप्रैल, २०१४ ई०

संस्थापक

महर्षि मँहीँ परमहंसजी महाराज

सम्पादक एवं प्रकाशक

डॉ० स्वामी गुरु प्रसाद

मो०–09006806109

प्रेस प्रबंधक

स्वामी स्वरूपानन्द

मो०–08603468101

सहयोग राशि : एक प्रति ६ रुपये
वार्षिक ६० रुपये
पंद्रहवर्षीय ७०० रुपये

विदेश के लिए : वार्षिक १० डॉलर
पंद्रहवर्षीय १०० डॉलर

सहयोग राशि भेजने का पता

प्रेस प्रबंधक, 'शान्ति-सन्देश'
महर्षि मँहीँ आश्रम कुप्पाघाट
भागलपुर, बिहार (भारत)
पिन–812003
महासभा कार्यालय–0641-2408183

ड्राफ्ट इस नाम से बनवाएँ–
Shanti Sandesh Patrika
('शान्ति-सन्देश' पत्रिका)

सूक्ति-कण

● शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

जो साधक इस मनुष्य-शरीर में, शरीर का नाश होने से पहले-पहले ही काम-क्रोध से उत्पन्न होनेवाले वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है, वही पुरुष योगी है और सुखी है।

● ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल से कमल के पत्ते की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता।

● योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥

जिसका मन अपने वश में है, जो जितेन्द्रिय एवं विशुद्ध अन्तःकरणवाला है और सम्पूर्ण प्राणियों का आत्मरूप परमात्मा ही जिसकी आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता।

–श्रीमद्भगवद्गीता

● चिन्तया चित्तसंतापआत्मदौर्बल्यमेव च।
प्रत्यक्षं जायते तस्मात् चिन्तां तां परिवर्जयेत्॥

यह प्रत्यक्ष देखने में आता है कि चिन्ता से चित्त को संताप और आत्मदुर्बलता ही होती है। इसलिए चिन्ता छोड़ देनी चाहिए। –रश्मिमाला

● विपद्यति हि ते धन्याः न ये दैन्यग्रणीदिताः।
धनैर्मलिनचित्तानामाल भन्तेऽङ्गणं क्वचित्॥

वे ही धन्य हैं, जो विपत्तिग्रस्त होने पर भी कभी हीनता से प्रेरित होकर धनोन्मत्त-पुरुष के आँगन में नहीं जाते। –स्कंद पुराण

● तं पुत्रपशुसम्पन्नं व्यासक्तमनसं नरम्।
सुप्तं व्याघ्रो मृगमिव मृत्युरादाय गच्छति॥

जैसे सोये हुए मृग को बाघ उठा ले जाता है, उसी प्रकार पुत्र और पशुओं से सम्पन्न एवं उन्हीं में मन को फँसाये रखनेवाले मनुष्य को एक दिन मृत्यु आकर उठा ले जाती है। –महाभारत, शान्तिपर्व

संतवाणी

संत दूलनदासजी महाराज

॥ मूल पद्य ॥

प्रानी! जप ले तू सतनाम।
मात पिता सुत कुटुम कबीला, यह नहिं आवै काम॥
सब अपने स्वारथ के संगी, संग न चलै छदाम।
देना-लेना जो कुछ होवै, करि ले अपना काम॥
आगे हाट-बजार न पावै, कोइ नहिं पावै ग्राम।
काम क्रोध मद लोभ मोह ने, आन बिछाया दाम॥
क्यों मतवारा भया बावरे, भजन करो निःकाम।
यह नर-देही हाथ न आवै, चल तू अपने धाम॥
अबकी चूक माफ नहिं होगी, दूलन अचल मुकाम।

★ ★ ★

जग में जै दिन है जिंदगानी।
लाइ लेव चित गुरु के चरनन, आलस करहु न प्रानी॥
या देही का कौन भरोसा, उभसा भाठा पानी।
उपजत-मिटत बार नहिं लागत, क्या मगरूर गुमानी॥
यह तो है करता की कुदरत, नाम तू ले पहिचानी।
आज भलो भजने को औसर, काल की काहु न जानी॥
काहु के हाथ साथ कछु नाहीं, दुनियाँ है हैरानी।

परमाराध्य सन्त सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज

प्रातःस्मरणीय अनन्त श्रीविभूषित पूज्यपाद संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज का यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत थाना बिहपुर में दिनांक–२७.१०.१९७० ई० को हुआ था।

श्रुतलेखक : महर्षि संतसेवी परमहंस

बन्दउँ गुरु पद-कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु बचन रबिकर निकर॥

प्यारे धर्मप्रेमी महाशयो!

ज्ञानियों ने कहा है कि यह संसार ईश्वर की माया है। ईश्वर की माया को सब लोग पकड़े हुए हैं। सब इस माया के अन्दर में सुख पाना चाहते हैं; परन्तु कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो ईश्वर की माया को पकड़ना पसन्द नहीं करते। ईश्वर को ही पकड़ लेना पसन्द करते हैं; परन्तु दोनों की एक ही चाह है कि सुख हो। ईश्वर की माया को पकड़कर सुख पाना चाहते हैं। उसी तरह ईश्वर को पकड़कर भी सुख पाना चाहते हैं।

जो माया को पकड़कर सुख पाना चाहते है, वे नहीं समझते हैं। जो ईश्वर को पकड़कर सुख पाना चाहते हैं, वे समझते हैं।

माया उसको कहते हैं, जो जिस तरह मालूम हो, उसी तरह नहीं रहे। सुखदायी मालूम पड़े; लेकिन है दुःखदायी। उसकी स्थिति मालूम पड़े; लेकिन उसकी स्थिति है नहीं। इसकी उपमा देकर गो० तुलसीदासजी कहते हैं–

रजत सीप महँ भास जिमि,
जथा भानुकर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सो,
भ्रम न सकइ कोउ टारि॥
यहि विधि जग हरि आश्रित रहई।
जदपि असत्य देत दुख अहई॥
–गो० तुलसीदासजी

मतलब यह है कि सीप में चाँदी का भास होता है; लेकिन चाँदी है नहीं। इसी तरह ईश्वर की माया भासमान है; लेकिन उसकी स्थिति जान पड़ती है; पर स्थिति है नहीं। केवल भ्रम से ही ऐसा मालूम होता है, धूप की चकमकी में। खासकर रेगिस्तान में बालू पर बड़ी चकमकी होती है। इससे जैसे पानी मालूम पड़ता है, पानी का हिलोर मालूम पड़ता है; लेकिन पानी है नहीं। इसी तरह ईश्वर की माया है–मालूम पड़ती है; लेकिन है नहीं। इसको जानना चाहते हो, तो अन्दर घुसो, तब पता लगेगा कि स्थिति इसकी नहीं है, स्थिति ईश्वर की है। जो ऐसी चीज है, उसको पकड़कर यदि कोई सुखी होना चाहते हैं, तो उसको पकड़कर कैसे सुखी हो सकते हैं। जो ऐसा मालूम पड़ता है कि है; लेकिन है नहीं, तो उसका सुख कैसा होगा? सुख मालूम पड़ता है; लेकिन सुख है नहीं।

भोजन करते हैं; स्वाद अच्छा लगा, सुख मालूम हुआ। भोजन करना छोड़ दिया, अब भोजन की रुचि नहीं है। जो सुख भोजन करते समय होता था, सो रहा नहीं। इसी तरह संसार का सुख है। स्वाद-सुख के लिए भोजन की ओर लोग चलते हैं और भोग करते चले जाते हैं, कभी तृप्ति नहीं। सब दिन इच्छा बनी रहती है–तृष्णा बढ़ती जाती है। सुख करके भोजन के पीछे चले थे; लेकिन मिलता दुःख है।

यह एक मिसाल कहा। इसी तरह तलाश करनी चाहिए कि सुख है कि नहीं?

माया के पदार्थों में खोजने पर सुख नहीं है। माया के अतिरिक्त परमात्मा या ईश्वर बच जाते हैं। इनकी निस्बत जो ख्याल करते हैं, तो कहते हैं कि वे सुखस्वरूप हैं–शान्ति-स्वरूप हैं। उन शान्ति-स्वरूप को ही पकड़ा जाय। माया की स्थिति नहीं है, ईश्वर की स्थिति है। क्योंकि संसार में सब पदार्थों पर ख्याल करने पर ऐसा मालूम होता है कि सभी सान्त हैं। ईश्वर की माया इन्हीं सान्त पदार्थों में बँटकर है। यह बाँट लोगों को इन्द्रियों में मालूम पड़ता है। जिभ्या में रस का स्वाद, नासिका में गंध का स्वाद, कान में केवल मीठे शब्द का स्वाद वा कड़ुआ शब्द का कड़ुआ स्वाद, नेत्र में केवल रूप का स्वाद–ये बँट-बँटकर स्वाद मालूम पड़ते हैं। रूप-रंग देखो, तो और भी बाकी रह जाता है। रूप भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। इसी तरह बाजे-गाजे का शब्द है। किसी में तृप्ति नहीं। इच्छा बढ़ती जाती है, तृष्णा बढ़ती जाती है। इसी तरह घ्राण-शक्ति में है। तृप्ति नहीं होती है। त्वचा में नाना प्रकार का स्पर्श हो; लेकिन स्पर्श-सुख भी शान्तिदायक नहीं। वहाँ भी तृष्णा बढ़ती जाती है। इसके वास्ते लोगों की दुर्दशा हो गई है। माया के अन्दर यही सुख है–रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। और तो जान पाते नहीं।

ज्ञानी लोग यह देखकर बताते हैं कि आगे बढ़ो। परमात्मा की माया ऐसी ही है। परमात्मा को पाओ, तो परमात्मा में जो सुख है, उसको पाओगे। परमात्मा में जो नित्यानन्द है–परमानन्द है, वही आपको भी मिलेगा। परम तृप्ति होगी। भक्त सूरदासजी ने कहा है–

परम स्वाद सबही जु निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै॥

वह स्वाद कैसा है? किसी को पता नहीं। वह स्वाद जबसे लगता है, कभी छूटता नहीं; परन्तु यह इन्द्रिय के द्वारा जानने योग्य सुख नहीं है, केवल आत्मा के द्वारा ही जानने योग्य है। ईश्वर का दर्शन, ईश्वर की प्रत्यक्षता, ईश्वर में जो आनन्द हैं–सभी आत्मगम्य हैं, इन्द्रियगम्य नहीं हैं। यह बात ज्ञानी लोग कहकर समझा देते हैं। इसलिये कहते हैं कि उधर चलो, ईश्वर की माया में लगे नहीं रहो। ईश्वर की प्राप्ति में ऐसी तृप्ति होगी कि दुःख का पता नहीं रहेगा। संसार में किधर चलो? उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम? संसार में किसी तरफ जाओ, इन्द्रिय-ज्ञान में ही रहना पड़ेगा। इन्द्रिय-ज्ञान में कभी तृप्ति नहीं होती । ज्ञानी लोग कहते हैं, अपने अन्दर जाओ। अपने अन्दर में हो सही; लेकिन जितने अन्दर में हो, उससे और अन्दर में जाओ। जैसे बाहर संसार विशाल है। उसी तरह अपने अन्दर का संसार विशाल है। जाग्रत में रहते हो, स्वप्न में रहते हो, सुषुप्ति में रहते हो, इनसे ऊपर जाओ। तीन अवस्था में सोया रहता है। सोने की अवस्था में अपनी चीज को नहीं जानता, अपने को नहीं जानता। इसलिए चौथी अवस्था में चलो। तब पता लगेगा कि ब्रह्मानन्द उसका स्वभाव ही है। तृष्णा से छुड़ाकर, पूर्ण संतुष्ट बनाकर रखता है। ऐसा सुख ईश्वर की खोज में चलते-चलते ईश्वर को पाकर होगा। अपना भी ज्ञान नहीं है। अपनी भी खोज अपने अन्दर करनी होगी। सबको प्रत्यक्ष है कि शरीर नाशवान है। शरीर छूटता है। इसको जला देता है; गाड़ देता है। यह शरीर पानी से बना है यानी पानी से पिण्ड बना है, फिर बचपन और

जवानी आयी। वयस बढ़ा। वयस के अनुकूल शरीर बढ़ता गया। सुन्दरता आती गई और फिर वह सुन्दरता नहीं रहती। फिर ऐसा होता है कि जैसे इसका पता नहीं था, वैसे ही पता नहीं रहता है। हर एक को यह विदित है कि मैं अपने शरीर में हूँ। इसलिये अपने अन्दर खोज करो। अपने अन्दर रहकर ही आत्मज्ञान होगा। इसके लिए जो अन्दर धँसता है, वह जगता है। जगना ऐसा होता है कि तीन अवस्था से ऊपर उठता है। तीन अवस्थाओं के स्थान आँख से नीचे भिन्न-भिन्न स्थानों को योगियों ने प्रत्यक्ष देखा है और लोगों को बताया है। इसका पता योग के ग्रन्थ में है। साधक को ग्रन्थ के अनुकूल अपने आप होता है। अन्दर में जो आँख से ऊपर उठता है, वही यथार्थ ज्ञान पाता है। ऊपर की ओर उठना वह काम नहीं है, जो संसार में है। इसमें तो यह काम है कि अपने को फैलाव से सिमटाव में लाओ। यही चित्त-वृत्ति का निरोध है। इतना समेटो कि फिर उससे अधिक सिमटाव नहीं हो। इतना सिमटाव हो कि एकविन्दुता आ जाय। इसकी बड़ी महिमा है। यह तीन अवस्थाओं से ऊपर ले जाता है।

सिमटी चीज ऊपर जाती है और फैली चीज नीचे गिरती है। इसलिये चित्तवृत्ति का निरोध करते हैं। पहले जप करते हैं, पुनः किसी रूप का ध्यान करते हैं। अच्छे गुरु के ज्ञान से एकविन्दुता प्राप्त करने का यत्न करके जानते हैं। एकविन्दुता होने पर पूर्ण सिमटाव होता है। तब वह जगता है, वह देखता है कि–

"सकल दृस्य निज उदर मेलि,
सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख,
अतिसय द्वैत वियोगी॥
सोक मोह भय हरष दिवस निसि,
देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दशा हीन,
संसय निर्मूल न जाहीं॥"

जो इस दशा में आता है, वही हरि सुख का पता पाता है। गो० तुलसीदासजी ने एक पद्य में कहा है–

"तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम बचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनन्त॥

भक्त सूरदास ने कहा है–

अपुनपौ आपुन ही में पायो।

संत कबीर साहब कहते हैं–

परमातम गुरु निकट विराजें, जागु-जागु मन मेरे।

परमात्म-गुरु अपने अन्दर हैं। तब इससे निकट और क्या होगा? तीन अवस्था में रहकर कितना भी ज्ञान बक जाओगे, कितना भी ज्ञान पढ़ लोगे, प्रत्यक्षता नहीं होगी। चौथी अवस्था में जाओ। इसी को कबीर साहब ने कहा है–जगो, परमात्मा प्रत्यक्ष होंगे। इसमें बात यह है कि कब काल ग्रास ले, ठिकाना नहीं है। इसलिए शीघ्र सद्गुरु की खोज करके उनके चरण में लगो। ध्यान करो; माया की ओर से छुटाव होगा। पूर्णता की ओर चलकर, पूर्णता में पहुँचकर पूर्ण होओगे। वह पूर्णता क्या है? परमात्मा। चाहिए सद्गुरु, सत्संग। सद्ज्ञान जो जानते हैं, सद्ज्ञान की युक्ति जानते हैं, अपने साधन करते हैं, औरों को उसमें लगाते हैं, ऐसे को सद्गुरु कहते हैं। ऐसे की शरण में जाओ। साधन करो। साधन ऐसा कठिन नहीं कि लोग नहीं कर सकें। सरल काम है, ख्याल लगाना। सभी से होगा। कैसे ख्याल लगावें, गुरु से जानो। जो इन बातों को जानते हैं, उनको लोग ज्ञानी कहते हैं।

संयमी होकर रहो। जो संयमी होकर रहते हैं, वे संसार में भी सुखी होते हैं और ईश्वर की ओर बढ़ते-बढ़ते सुखी होते जाते हैं। ईश्वर को पाकर परम सुखी हो जाते हैं। फिर संसार की कोई इच्छा नहीं रह जाती। चाहिए ऐसा सत्संग किया जाय। संयमित होकर रहना तप है। इसके लिए क्या करना होगा? पहली बात है–झूठ को छोड़ देना। दूसरी बात है–किसी किस्म की चोरी नहीं करनी। तीसरी बात है–व्यभिचार नहीं करना। चौथी बात है–नशा नहीं

लेना। पाँचवीं बात है–हिंसा नहीं करनी। इस सिलसिले में निरामिष-भोजी बनो। यह देश तो ऐसा है कि निरामिष-भोजी होकर रहना सरल है। संसार में ऐसा भी देश है, जहाँ निरामिष होकर रहना कठिन है। आमिष में पाशविक गुण रहता है। पाशविक गुणों को बढ़ाने से अन्तस्साधना, ईश्वर में प्रेम होना असम्भव है। इसलिए ईश्वर के प्रेमी को पंच पापों से छूटकर रहना आवश्यक होता है। जो पंच पापों से छूटकर रहता है, संसार में वह पूज्य होता है। उसकी तृष्णा छूटती जाती है। लोभ-लालच छूटते जाते हैं। तब यह छूटने का जो लाभ है, सो होता है। न पैसा बहुत चाहिए, न अन्न बहुत चाहिए। अवगुणों को छोड़ता हुआ सद्गुणों को ग्रहण करते रहने से संसार में सुखी रहता है।

धर्म वह है, जिससे इहलोक और परलोक–दोनों में सुखी रहा जाय। जो पंच पापों से छूटकर रहता है, वह उत्तम परलोक पाता है और अन्त में परमात्मा को भी पाता है। संसार की आसक्ति छूटती जाती है। ईश्वर-भजन में मन लगता है। विकारों से छूटनेवाला ईश्वर की ओर बढ़ता है। जो ईश्वर की ओर बढ़ता है, वह पापों से छूटता है। लोगों को चाहिए कि ईश्वर का भजन करें। संसार का काम छूटता नहीं। खेती, व्यापार, नौकरी करते हुए लोग ईश्वर-भजन करें। संयमित रहने से नौकरी में, खेती में वाणिज्य-व्यापार में, किसी में हानि नहीं। नित्य सत्संग करना चाहिए।

"बिनु सत्संग भगति नहिं होई।"

–विनय-पत्रिका ☐

सत्संग की आवश्यकता

ईश्वर-भक्ति के बिना ईश्वर की सहायता नहीं मिलती और बिना ईश्वर की सहायता के सत्य पर प्रतिष्ठित रहना बड़ा दुष्कर है। यह बहुत कठिन साधन है। धीरे-धीरे लोग इसमें पूरे होते हैं। भक्ति साधन में सदाचार-पालन आवश्यक है। सत्संग के द्वारा ये बातें जानी जाती हैं। इसलिए सत्संग की बड़ी आवश्यकता है।

सत्संग से दुष्ट कर्म छूट जाते हैं। इस तरह के अधिक लोग हो जायेंगे, तो झूठ, चोरी, नशा, हिंसा, व्यभिचार, ठगी, बेईमानी आदि दुष्टकर्म नष्ट हो जाएँगे। यह सीखना होगा सत्संग में। सत्संग में दो तरह से ज्ञान मिलता है–एक ग्रंथ-पाठ से और दूसरा प्रवचन से।

आत्मनिष्ठ होकर कर्म करो

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है–आत्मनिष्ठ होकर कर्म करो। इसलिए क्या करना होगा? अपने को अपने अन्दर रखो। मन बाहर-बाहर भागता है, उसको रोकने का यत्न करो। अपना निशाना अपने अन्दर रखकर उसपर लगे रहना; यहाँ से आत्मरत होने का आरम्भ होता है। चलते-फिरते, उठते-बैठते इसका ख्याल रखे, तब आत्मरत होना होगा। तब वह कर्म बन्धन-दायक नहीं होगा।

सभी धर्मों में स्तुति-प्रार्थना

ईश्वर का ज्ञान हमको नहीं मिलता, यदि सन्त नहीं होते। बिना गुरु के ईश्वर-प्राप्ति का यत्न नहीं मिलता। इसलिए वे सन्त और गुरु हमारे बड़े उपकारी हैं। हम उनके कृतज्ञ हों। हमें उनकी भी स्तुति करनी चाहिए। जो लोग कहते हैं कि प्रार्थना-स्तुति में समय लगाना, समय को बर्बाद करना है, वे भूल में है। ईसाई, इस्लाम, वैदिक, सिक्ख–सब धर्मों में स्तुति और प्रार्थना है। धर्म की परिभाषा और सिद्धान्त को नहीं जानना, बहुत गलत बात है। कुछ लोग केवल कुछ साधन बताते हैं और ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना आदि की मनाही करते हैं, उनसे बचो।

–महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज

संतोष से ऐसे सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है, जिससे उत्तम दूसरा लाभ कोई सुख नहीं है। –महर्षि पतंजलि

पूज्यपाद महर्षि संतसेवी परमहंस

प्रवचन-पीयूष

पूज्यपाद महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज का यह प्रवचन महर्षि मेँहीँ सत्संग-मंदिर, चुटिया (राँची) में दिनांक-२०.०६.१९९५ ई० को हुआ था। प्रेषक : सम्पादक

मंगल मूरति सतगुरू, मिलवैं सर्वाधार। मंगलमय मंगलकरण, विनवौं बारम्बार॥
धन्य धन्य सद्गुरु सुखद, महिमा कही न जाय। जो कुछ कहूँ तुम्हरी कृपा, मोतें कछु न बसाय॥

आदरणीय सज्जनवृन्द तथा आदरणीया माताओ एवं बहनो!

संत कबीर साहब की वाणी है–

"बिन सतगुरु नर रहत भुलाना,
खोजत फिरत राह नहिं जाना।"

वह रास्ता क्या है? उसका आरम्भ कहाँ से होता है और अन्त कहाँ होता है? इस संसार में जब मानव का जन्म होता है; समय पाकर वह जब कुछ बढ़ता है; कुछ पढ़ता है, तो कुछ समझने-बूझने लग जाता है। जब वह सत्संग करता है, सज्जनों का सम्पर्क करता है, तो उसके मन में दुःख से छूटने के लिए, सुख पाने के लिए एक उत्कण्ठा जागरित होती है। सत्संग के द्वारा उसको इस बात का ज्ञान होता है कि ईश्वर की प्राप्ति में ही परम सुख की प्राप्ति है, परम शान्ति की प्राप्ति है, परम कल्याण की प्राप्ति है। तो वह ईश्वर की खोज करने के लिए चलता है; किन्तु बात यह होती है; जैसा कि कबीर साहब ने कहा है–

जल परिमाने माछरी, कुल परिमाने बुद्धि।
जाको जैसा गुरु मिला, ताकी तैसी शुद्धि॥
गुरु-गुरु में भेद है, गुरु-गुरु में भाव।
सोई गुरु नित बन्दिये, (जो) शब्द बतावे दाव॥

कबीर साहब ने सात प्रकार के गुरुओं का वर्णन करते हुए अन्त में कहा है–

सातवँ गुरु जिन सत शब्द लखाया।
जहाँ का तत्त्व सो तहाँ समाया॥
कबीर सात गुरु संसार में, सेवक सब संसार।
सतगुरु सोई जानिये, जो भव जल उतारे पार॥

जब संत सद्गुरु के दर्शन होते हैं; उनका सद्ज्ञान मिलता है; अन्तस्साधना की उनसे सद्युक्ति मिलती है और सदाचार-समन्वित हो साधक साधना करता है, तब उसे सर्वेश्वर का साक्षात्कार होता है। संत सद्गुरु के अभाव में यानी जिनको संत सद्गुरु के दर्शन नहीं हुए, उनके सन्दर्भ में संत कबीर साहब कहते हैं–

"बिनु सतगुरु नर रहत भुलाना,
खोजत फिरत राह नहिं जाना।"

उस प्रभु को पाने की जो राह है, उसकी खोज लोग करते हैं; लेकिन वह राह मिलती नहीं है; क्योंकि संत सद्गुरु से भेंट होती नहीं है; उनके दर्शन मिलते नहीं हैं। संत सद्गुरु क्या कहते हैं? अगर भेंट हो जायँ, मिल जायँ, तो वे कहते हैं कि ऐ यात्री! प्रभु की खोज करने के लिए तुम कहाँ जा रहे हो?

"खोजो पंथी पंथ तेरे घट भीतरे।
तू अरु तेरो पीव भी घट ही अन्तरे॥"

जिस प्रभु की खोज के लिए तुम बाहर संसार में चलते हो, वह प्रभु तो तुम्हारे अन्दर ही है और मजे की बात यह है कि तुम भी अपने अन्दर ही हो। तो फिर बाहर संसार में खोजने के लिए क्यों जाते हो? इसपर यदि प्रश्न हो कि "प्रभु भीतर हैं, तो क्या वे बाहर में नहीं हैं? परमात्मा के लिए तो कहा गया है कि–

"व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।"

तथा–

"प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना।"

प्रभु तो सर्वत्र हैं। बाहर भी हैं और भीतर भी हैं। अगर हम बाहर ही खोजने के लिए जाते हैं, तो क्या गलत करते हैं? इसके उत्तर में निवेदन है कि प्रभु की खोज करने के लिए जो हम बाहर में जाते हैं, तो किस चीज से खोजते हैं? इन्द्रियों के द्वारा। शरीर के बाहरी भाग में दश इन्द्रियाँ हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ–आँख, नाक, कान, जिभ्या और त्वचा और पाँच कर्मेन्द्रियाँ–मुँह, हाथ, पैर, गुदा और लिंग। भीतर में चार इन्द्रियाँ हैं–मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। बाहर संसार में हम इन्हीं के माध्यम से चलते हैं। हमारी ये इन्द्रियाँ इतनी मोटी हैं कि उस सूक्ष्मतम परमात्मा को ग्रहण नहीं कर सकतीं। परमात्मा इन्द्रियातीत है। जबतक हम इन्द्रियातीत नहीं होंगे, तबतक परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होगा। साधारण-सी बात है कि हमारा शरीर पाँच तत्त्वों से निर्मित है–मिट्टी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। जिन पाँच तत्त्वों से हमारा शरीर निर्मित है, उन पाँच तत्त्वों में भी सभी तत्त्वों को हम नहीं देख पाते हैं। पाँच तत्त्वों में मात्र मिट्टी, जल और अग्नि–इन तीन तत्त्वों को हम देखते हैं, वायु को नहीं देखते, आकाश को नहीं देखते। जिन पाँच तत्त्वों से शरीर निर्मित है, उन पाँच तत्त्वों में भी जब सब तत्त्वों को हम नहीं देखते हैं, तो इन तत्त्वों से जो सूक्ष्म है, उनको हम कैसे देखेंगे? मिट्टी स्थूल है। उससे कुछ सूक्ष्म जल है, उससे सूक्ष्म अग्नि है। उससे सूक्ष्म वायु है, उससे सूक्ष्म आकाश है। वायु का तो स्पर्श भी होता है; किन्तु आकाश का तो स्पर्श भी नहीं होता। तब आकाश से जो पूर्व का है, वह कितना सूक्ष्म होगा? फिर उसको हम इन इन्द्रियों के द्वारा कैसे ग्रहण कर सकते हैं? इसलिए बाहर की ओर नहीं, भीतर की ओर चलना होगा। भीतर की ओर चलने से इन्द्रियों से छूटना होता है। जब हम जाग्रतावस्था में रहते हैं, तो चौदहों इन्द्रियों से युक्त रहते हैं। जाग्रतावस्था से जब हम स्वप्नावस्था में जाते हैं, तो हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ बाहर ही छूट जाती हैं यानी दस इन्द्रियों से हमें मुक्ति मिल जाती है, मात्र चार इन्द्रियों के साथ हम स्वप्नावस्था में रहते हैं। जब हम सुषुप्ति की अवस्था में जाते हैं, तो मन, बुद्धि, अहंकार–ये तीन इन्द्रियाँ छूट जाती हैं, मात्र एक चित्त इन्द्रिय रह जाती है। संतजन कहते हैं कि इन तीनों अवस्थाओं से परे एक चौथी अवस्था है, जिसको तुरीय कहते हैं, उसमें तुम्हारी ये सारी इन्द्रियाँ छूट जाती हैं; सूक्ष्म चार इन्द्रियों का परिमार्जित रूप रह जाता है। इसलिए अपने अन्दर चलकर चौथी अवस्था प्राप्त करो। संत दरिया साहब (मारवाड़ी) के वचन में है–

मन बुधि चित्त हंकार की, है त्रिकुटी लग दौड़।
जन दरिया इनके परे, ब्रह्म सुरत की ठौर॥

त्रिकुटी तक जाते-जाते ये चतुष्टय अन्तःकरण भी थक जाते हैं; इनकी दौड़ समाप्त हो जाती है; मन्थर गति हो जाती है। संत तुलसी साहब (हाथरसवाले) कहते हैं–

सहस कँवल दल पार में, मन बुद्धि हिराना हो।
प्रान पुरुष आगे चले, सोइ करत बखाना हो॥

इस प्रकार सुरत सूक्ष्म से कारण में जाती है। पुनः कारण और महाकारण को पार करने पर कैवल्यावस्था की जब प्राप्ति होती है, तब जड़ के सारे आवरण झड़ जाते हैं, मात्र चेतन रह जाता है। उसी चेतन की शुद्धावस्था में परम प्रभु परमात्मा का साक्षात्कार होता है। जैसे दूध में घृत रहने पर भी उससे पूड़ियाँ हम नहीं छान सकते। दूध को मथकर घृत को पृथक् कर लेते हैं, फिर पूड़ियाँ छानते हैं। उसी तरह जबतक जड़ के साथ चेतन है, परमात्मा की प्राप्ति नहीं होगी। जड़ से चेतन को पृथक् कर लेंगे, तब परमात्मा की प्राप्ति होगी। इसीलिए स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने कहा है–

जिमि दूध के मथन से, निकसत है घी जतन से।

तिमि ध्यान की लगन से, परब्रह्म ले निहारा॥

शुद्ध चेतन ही परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करता है और वहाँ भी एक आवरण रहता है; क्योंकि चेतन मंडल भी एक आवरण है। वहाँ द्वैत भाव रहता है। जब वह आवरण भी हट जाता है, तो द्वैत भाव मिट जाता है; जीवात्मा परमात्मा से मिलकर एक हो जाता है। जहाँ से जीव आया था, वहाँ पहुँच जाता है। कहने के लिए सारी बातें बता दी गईं; लेकिन वर्तमान स्थिति हमारी क्या है? हम कहाँ हैं? आँखें बन्द करके देखते हैं, तो अपने को अन्धकार में पाते हैं। इसीलिये हमारे परम पूज्य गुरुदेव के वचन में आया है–

"तू उतरि पर्‌यो तम माहिं।"

और प्रभु का साक्षात्कार कहाँ होगा? तो वे कहते हैं–'निःशब्द में।' इसलिये–

"यहि ते परि गयो दूर चलो निःशब्द में।"

निःशब्द में पहुँचने के लिए कहाँ से चलना होगा? जो जहाँ बैठा रहता है, वहीं से वह चलता है। इस हॉल में जहाँ-तहाँ से लोग आकर बैठे हुए हैं। घर से आये हैं, यहाँ बैठे हुए हैं। अब वे जब घर जाना चाहेंगे, तो कहाँ से चलेंगे? जो जहाँ बैठे हैं, वहीं से उठकर चलेंगे। उसी तरह निःशब्द से आकर हम इस शरीर के अन्धकार-मण्डल में बैठ गये हैं। अब चलेंगे, तो अन्धकार से ही चलेंगे। अँधेरी रात कितनी भी लम्बी क्यों न हो, चलते-चलते रात का अन्त होगा। जब रात का अन्त हो जाएगा, तब क्या होगा? दिन होगा। उसी तरह अन्धकार में चलते-चलते प्रकाश में जायेंगे। प्रकाश से शब्द में जायेंगे, तब शब्द से निःशब्द में जायेंगे। अब जिज्ञासा होती है कि अन्धकार में से हम कैसे और कहाँ से चलेंगे? इस जिज्ञासा का समाधान हमारे गुरुदेव करते हैं–

"नयन कँवल तम माँझ से पंथहिं धारिये।"

अर्थात् नयनाकाश से–'नयन कँवल तम माँझ' से चलना होगा। यहीं से रास्ता का आरम्भ है। वह रास्ता कैसा है? वह मोटा रास्ता नहीं है, झीना रास्ता है।

"उस नाल का झीना दुवारा, गुरु तुझे देंगे बता।"

क्या बता देंगे?

दोउ नैन नासा मध्य सन्मुख,
सुई अग्र दर ले लही॥

सूई का अगला भाग कितना महीन होता है! वहाँ पर जो अपने को टिका सकते हैं; स्थिर कर सकते हैं, तब क्या होगा–'तम फटे' अर्थात् तम फट जायेगा। तब फिर क्या होगा? 'जोती भरे'–ज्योति-पुंज में प्रतिष्ठित हो जाओगे। तत्पश्चात् क्या होगा? तो कहा–'आकाश का तू सैर कर।' अर्थात् अन्तराकाश में गमन करोगे। भगवान बुद्ध ने कहा था–

"हंसादिच्च पथे यन्ति, आकासे यन्ति इद्धिया।"

हंस सूर्य के रास्ते पर जाते हैं। यह जीवात्मा सूर्य पथ पर चलता है–प्रकाश में चलता है। ऋद्धि से योगी आकाश में गमन करता है। तीन आकाशों का वर्णन सन्त दादू दयालजी महाराज ने किया है–

"सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा।"

ये तीन शून्य क्या-क्या हैं? अन्धकार का शून्य, प्रकाश का शून्य और शब्द का शून्य। इन तीनों शून्यों को पार कीजिये। जो कोई इन तीनों शून्यों को पार कर जाते हैं, तब क्या मिलता है? तो कहा–'अगुण-सगुण नहिं दोई।' वे सगुण और निर्गुण–दोनों के परे चले जाते हैं। अन्तस्साधना की क्रमबद्धता कितनी अच्छी है, परम पूज्य गुरुदेव की वाणी में सुनिये–

नयन कँवल तम माँझ से पंथहिं धारिये।
सुनि धुनि जोति निहारि के पंथ पधारिये॥

भगवद्भक्ति ही महान लाभ

सत्संग से मेरी निर्मल नैष्ठिकी भक्ति प्राप्त होती है। भक्ति ही संसार का सबसे बड़ा लाभ है। इससे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। बिना भोग के सौ जन्मों तक भी कर्मों का क्षय नहीं होता है; परन्तु मेरी भक्ति से महान् कर्मराशि भी शीघ्र ही समाप्त हो जाती है।

–आदिपुराण

गुरु-वचन

महर्षि हरिनन्दन परमहंस

संतमत के वर्तमान आचार्य पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज का यह प्रवचन में दिनांक–०८.०३.२०१४ ई० को डी० डी० ए० ग्राउण्ड जागृति इन्क्लेव कड़कड़डूमा, आनन्द विहार, दिल्ली में अखिल भारतीय संतमत-सत्संग के १०३वाँ वार्षिक महाधिवेशन के अपराह्नकालीन सत्संग के शुभ अवसर पर हुआ था।
प्रेषक–डॉ० स्वामी गुरु प्रसाद

बन्दउँ गुरु पद-कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु बचन रबिकर निकर॥

मंच पर विराजमान श्रद्धेय महात्मागण, समादरणीय सज्जनवृन्द, आदरणीया माताओ एवं भक्तिमती बहनो!

अभी आपने जो अपराह्नकाल के सत्संग में भगवान श्रीराम के उपदेश का पाठ सुना, उस पाठ के आधार पर बाबा लोगों से आपने जो प्रवचन सुना, उसका सारांश यही है कि हमलोगों को जो मनुष्य का तन प्राप्त है, इसकी उपयोगिता धन-सम्पत्ति, भोग-सामग्री, पद-प्रतिष्ठा, राज-पाठ की प्राप्ति में नहीं है; बल्कि अपना उद्धार करने के लिए है, अपना कल्याण करने के लिए है। यह काम केवल इसी मनुष्य-शरीर में किया जा सकता है, अन्य शरीरधारी इस काम को नहीं कर सकता। अन्य शरीर में भले ही सुख की प्राप्ति हो जाय; लेकिन अपने आपका उद्धार, अपने आपको बंधन से मुक्त कर परम सुख की प्राप्ति करना नहीं हो सकता। इसलिए गो० तुलसीदासजी महाराज ने रामचरितमानस में लिखा है–

देह धरे कर यह फल भाई।
भजिय राम सब काम बिहाई॥

इस चौपाई को पढ़कर हमारे परमाराध्य गुरुदेव बचपन के विद्याध्ययन काल में ही अपने घर-परिवार के सारे सुखों का परित्याग करके परम सुख की खोज में निकल पड़े। घर से निकलने के बाद कठोर तपस्या करके उन्होंने जिस परम सुख की प्राप्ति की, उस सुख को प्राप्त करने का मार्ग हमलोगों को बताया और बहुत प्यार से कहा–"यह जो अवसर तुम्हें मिला है। यह सदा रहनेवाला नहीं है।" कहने का मतलब यह कि मनुष्य-शरीर जो अभी प्राप्त है, सब दिन नहीं रहेगा, एक-न-एक दिन शरीर छूटेगा। हमने जो कुछ भी यहाँ पर अर्जन किया है–धन-सम्पत्ति, भोग-सामग्री, कुछ भी हमारे साथ नहीं जाएगा। गो० तुलसीदास ने लिखा है–

अरब खरब लौं द्रव है, उदय अस्त लौं राज।
जौं तुलसी निज मरन है, तो आवै केहि काज॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि बहुत सम्पत्ति अर्जन कर लिए हो, बहुत ऊँचे पद पर पहुँच गये हो अथवा बहुत बड़ा राज्य हासिल कर लिए हो, यदि शरीर तुम्हारा छूटनेवाला हो, तो वह सम्पत्ति किस काम में आएगी। इसी बात को हमलोग भूले हुए हैं। उसको याद रखें। इसको अगर भूले हुए रहेंगे, तब हमारा कल्याण नहीं होगा। एक संत हुए नारायण स्वामी, उन्होंने भी यही बात कही–

दो बातों को याद रख, जो चाहो कल्याण।
नारायण एक मौत को, दूजे श्री भगवान॥

यदि अपना कल्याण चाहते हो, तो दो बातों को याद रखो, भूलो मत। अनमोल शरीर जो परमात्मा ने रचा है, इसकी अवधि बीतती जा रही है। इससे जो होनेवाला महत्त्वपूर्ण काम अगर हम नहीं कर पाये, तो यह शरीर व्यर्थ ही

समाप्त हो जाएगा। इसलिए मौत को याद रखिये। मौत को याद रखनेवाला व्यक्ति अपने काम में संलग्न रहता है। जो मौत को भूले हुए रहते हैं, वे अपने महत्त्वपूर्ण कार्य से विलग होकर रहते हैं। दूसरी ओर मौत को भूले रहनेवाले व्यक्ति, पाप कर्म से बचकर नहीं रह पाते हैं। हमलोगों के गुरु महाराज ने कहा था–"जो मौत को ठीक-ठीक याद रखेंगे, वे संसार के भोगों में नहीं फँसेंगे।" इस बात को समझाने के क्रम में उन्होंने एक राजा का उदाहरण देकर कहा था–

एक राजा ऐसे थे, जो बड़े विलासी और अहंकारी थे। वे साधु-महात्मा किसी को नहीं मानते थे। उनके राज-दरबार में अगर कोई महात्मा पहुँच जाते, तो उससे पूछते–'तुम क्यों साधु बने?' महात्मा जो उत्तर देते थे, उससे उसको संतुष्टि नहीं होती थी, तो वे उसको जेल में डाल देते थे। दिनभर उससे चक्की से आटा पिसवाते थे। जेल में जाने के बाद उसे चक्की चलाना पड़ता था। इस तरह से हजारों साधुओं को कैद में डाल दिये। उन्हीं के समय रामानन्द स्वामी, जो बहुत उच्च कोटि के संत थे, उनको इस बात की जानकारी हुई कि राजा ने बहुत-से साधुओं को जेल में डाल दिया है। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा–'महात्माओं ने तो कोई अपराध नहीं किया है। दण्ड तो देना चाहिए अपराधी को, पर साधु लोग को बिना अपराध के राजा दण्ड दे रहे हैं और उनसे चक्की चलवा रहे हैं। तुमलोगों में से कोई जाकर उन्हें छुड़ाओ। पर किन्हीं में हिम्मत नहीं हुई। संत कबीर साहब ने कहा–'मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।' संत कबीर साहब जब राजा के दरबार में पहुँचे। उनसे भी वही प्रश्न राजा ने किया–'क्यों साधु बन गए?' उन्होंने बड़ी निर्भीकता के साथ उत्तर दिया–मैं मौत को जानता हूँ। मौत को जानने के कारण मैं साधु बन गया हूँ। यदि आप भी अपनी मौत को जानेंगे, तो आप भी साधु बन जाएँगे। राजा को हुआ कि यह तो बड़ी निर्भीकता के साथ बोल रहा है। इसको तो जरा-सा भी डर नहीं है; लेकिन इसका उत्तर ठीक है या नहीं, स्वयं निर्णय नहीं करने पर वजीर की ओर देखने लगे। वजीर साहब ने हँसते हुए कहा–'महाराज! इस बात को तो सभी कोई जानता है कि शरीर छूटेगा, इसका उत्तर ठीक नहीं है।' राजा ने कहा–'इसको भी जेल में डाल दो।'

संत कबीर साहब कहते हैं–'तुम जो करना चाहते हो, करो; लेकिन एक बात बहुत काम की है–वह बात मैं अकेले में कहना चाहता हूँ।' राजा के मन हुआ, क्या कहना चाहता है? राजा के दरबार में जितने लोग थे, सबको अलग हटवा दिये, तब उससे पूछा–'क्या कहना चाहते हो, कहो?' कबीर साहब ने कहा–'आपने जो प्रश्न किया, उसका मैंने जो उत्तर दिया, उससे आपको संतुष्टि नहीं मिली; लेकिन आप संतुष्ट होना चाहते हैं, तो एक काम करें। वह काम यह है कि अभी आदेश दे दें कि आज से सातवें दिन वजीरे आजम को फाँसी दी जाएगी। तब देखना कि क्या होता है।' राजा के मन में हुआ। ऐलान करके देखूँ। जितने उनके दरबार में थे–सभी को बुलाए गये। सभी आ गए और आते ही घोषणा कर दी कि आज से सातवें रोज वजीरे आजम को फाँसी दी जाएगी। सारे राज-दरबार में सन्नाटा छा गया कि क्या बात हो गई, जो इस तरह का आदेश दिया गया। किसी की हिम्मत नहीं हुई पूछने की। राजदरबार से उठने पर सब-के-सब अपने घर जाने लगे। वजीर साहब ने जब इस आदेश को सुना, तो उसके होश उड़ गये। वह भी किसी तरह लड़खड़ाते हुए अपना घर पहुँचा। वजीर साहब को तो खाना-पीना बिल्कुल कुछ भी नहीं सुहाने लगा।

इधर कबीर साहब को जेल ले गया। जेल में कबीर साहब देखते हैं कि हजारों साधु लोग चक्की चला रहे हैं। वहाँ पहुँचते ही

इन्होंने कहा–'कोई चक्की मत चलाओ। चक्की अपने आप चलेगी।' उनके कहने पर जितने महात्मा लोग थे, सबने चक्की चलाना बंद कर दिया। बंद करने पर भी चक्की पहले की भाँति स्वतः चलने लगी। यह देख करके लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। कैदखाने में जो कर्मचारी लोग थे, उनको भी देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। राजा साहब को सूचना दी गयी कि अभी जो एक महात्मा जेल आए हैं। उन्होंने सभी महात्माओं से कहा कि कोई चक्की मत चलाओ, चक्की अपने आप चलेगी। उनके कहने पर सबने चक्की चलाना छोड़ दिया, तो पर भी चक्की अपने आप चल रही है। यह सुनकर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। स्वयं देखने के लिए आ गये। उसने देखा–सचमुच चक्की चल रही है। इससे वह बहुत भयभीत हो गया। ऐसे सिद्धपुरुष को मैंने जेल में डाल दिया, अब क्या होगा?

संत कबीर साहब ने कहा–'देखो, डरो मत; लेकिन एक काम, जो वजीर साहब को सातवें रोज फाँसी स्थल पर ले जाना है। फाँसी देने की आवश्यकता नहीं है; इस बात को गुप्त रखें, पर सभी तरह का आयोजन करें। उसको फाँसी जिस तरह दी जाती है, उसकी पूरी तैयारी हो। उनको वहाँ पर सातवें रोज मँगाना है। मैं भी वहाँ पहुँच जाऊँगा। तब देखना क्या होता है!'

वैसा ही किया गया और सातवें रोज वजीर साहब को फाँसी स्थल पर लाया गया। लोग उमड़ पड़े देखने के लिए कि आज वजीर साहब को फाँसी दी जा रही है। संत कबीर साहब भी वहाँ पहुँचे, तो देखा कि वजीर साहब का शरीर तो सूख गया है, बिल्कुल उदास और बहुत भयभीत भी है। कबीर साहब ने पूछा–'अरे! तुम्हारा शरीर ऐसा क्यों हो गया। ऐसा लगता है कि कई रोज से तुमने कुछ भी नहीं खाया है, बात क्या है!' वजीर साहब ने कहा–'महाराज! आप तो जानते ही हैं कि आपके ही सामने फाँसी देने का आदेश हुआ था और अभी फाँसी होनेवाला है।' संत कबीर साहब ने कहा–'हाँ, यह तो हमारे सामने हुआ था; लेकिन इसके लिए तुमने भोजन क्यों छोड़ दिया। अरे! मौत को तो तुम उस दिन भी जानते थे। उस दिन हँसते हुए तुम्हीं ने तो कहा था कि मौत को कौन नहीं जानता है! इसको सब कोई जानता है। उस दिन भी जानता था; लेकिन उस दिन तो तुमने भोजन नहीं छोड़ा था, बहुत प्रसन्न होकर हँसते हुए उत्तर दिया था। इस समय तुम भोजन क्यों छोड़ दिये हो! तुम्हारा चेहरा सूखा है। जाओ, पहले भोजन कर लो, फाँसी होने में अभी कुछ विलम्ब है। खेल-तमाशा भी देखना चाहते हो, तो देख लो। तुम्हें घोड़े पर सवार होकर सैर करने का बड़ा शौक था, वह भी करके आ जाओ।'

उसने कहा–'हमको कुछ भी अच्छा नहीं लगता।' कबीर साहब ने कहा–'क्यों?' उसने कहा–'हमारे सामने मौत खड़ी है।' कबीर साहब ने कहा–'मौत खड़ी है। मौत को पहले भी जानता था।' उसने कहा–'पहले इस तरह से नहीं जानता था, पहले तो होता था कि कभी मौत होगी, पर आज प्रत्यक्ष मौत खड़ी है और मौत के मुँह में जानेवाला ही हूँ। जब मौत के मुँह में अभी हमें जाना ही है, तो हम भोजन करके क्या करेंगे, खेल-तमाशा देखकर क्या करेंगे, घोड़े पर सवार होकर क्या करेंगे?' संत कबीर साहब ने राजा से कहा–"देखो, यह क्या कह रहा है, उस दिन मौत को इस तरह से नहीं जानता था, आज जिस तरह से जान रहा है। इस तरह जानने के कारण यह भोजन करना नहीं चाहता, खेल-तमाशा देखना नहीं चाहता। इसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। जिस तरह से मौत को यह अभी जान रहा है, मैं भी इसी की भाँति मौत को जानता हूँ, इसलिए संसार के भोगों में मेरी आसक्ति नहीं है। तुमने यही न पूछा था, 'क्यों साधु बन गया।' मैं मौत को जानता हूँ, इसलिए संसार की भोग-सामग्री में मेरी आसक्ति नहीं है। हमें मौत

का भय नहीं है। हमें किसी का भय नहीं है। तुम्हारे मन में होता है कि मैं राजा हूँ, मैं बादशाह हूँ, मैं जो करूँगा, वही होगा। इस अहंकार में तुमने इतना अधर्म किया है, और तो और हजारों साधुओं को तुमने जेल में डाल दिया है। उनसे चक्की चलवाते हो, इसका फल क्या होगा? एक बात यह है कि तुम सदा राजसिंहासन पर बैठे नहीं रह पाओगे; क्योंकि–

आए हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ी चले, एक बाँधे जात जंजीर॥

जो आए हैं, सभी जाएँगे। चाहे राजा हो, रंक हो या फकीर हो–सभी को जाना होता है। कैसे जाएँगे? 'एक सिंहासन चढ़ी चले, एक बाँधे जात जंजीर।' जो धर्मात्मा होते हैं, पुण्यात्मा होते हैं, वे तो विमान पर चढ़कर अपने पुण्य के फल को भोगने के लिए स्वर्ग जाते हैं; लेकिन तुम्हारे ऐसे पापी के लिए विमान नहीं आएगा। तुम्हें तो यम के फंदे में फँसकर यम की मार खाते हुए यमलोक जाना पड़ेगा। अगर इस बात को तुम देखना चाहो, तो शरीर छूटने पर तुम्हारी क्या दशा होगी, मैं अभी दिखला सकता हूँ।

संत कबीर साहब ने मौज में आकर अपने योगबल से उस तरह का दृश्य प्रस्तुत कर दिया, जिससे राजा को देखने में आने लगा–राज्य-भवन और सब सम्पत्ति बिल्कुल समाप्त हो गयी। ऐसा लगा–बड़ा सूना स्थान है, बड़ा भयंकर स्थान, परिचित व्यक्ति कोई भी नहीं, अंधकार-सा मालूम पड़ता है। बड़ा भयावह दृश्य है और देखा कि यमदूत आ गया, उनके हाथ में भारी मुकदर है और उससे उसको पीटना प्रारंभ किया। वे चिल्लाने लगे। खूब चिल्लाने लगे, तब थोड़ी देर के बाद संत कबीर साहब ने अपनी माया समेट ली।

कबीर साहब ने कहा–देखो, शरीर छूटने पर तुम्हारी यही हालत होगी। अब भी चेतना चाहो, तो चेत जाओ। संत कबीर साहब की वाणी का ऐसा बाण उसको लगा कि किसी को बिना कुछ कहे अपना राज्य अपने पुत्र को सौंपकर उसी क्षण राज्य से निकल गए। कुछ समय तक वे अज्ञात स्थान–गाँव-घर, शहर, बस्ती से अलग छिपकर रहे। कुछ समय के बाद उनका पहलेवाला वेश भी नहीं रहा। भोजन के बिना शरीर सूख गया, केश-दाढ़ी बढ़ गई, फटा-चिथड़ा कपड़ा पहनने लगा, पर भिखारी के रूप में रहकर अपना सुमिरण-ध्यान करने लगा।

उधर राजा के पुत्र के मन में हुआ कि मेरे पिताजी राजा थे, राजा बनकर राजभवन में रहते, तो आराम से रहते। अब वे कहाँ होंगे, किस तरह से होंगे, क्या खाते होंगे? उसकी खोज होनी चाहिए। खोज करने के लिए चारो तरफ सिपाही भेजा गया। बहुत समय बाद उसका पहलेवाला चेहरा नहीं रहा, वह जमीन पर बैठा हुआ भिखारी के वेश में था। एक सिपाही ने उनसे ही पूछा–'मेरे राजा साहब राज्य का परित्याग करके निकल पड़े हैं, क्या आपने उन्हें देखा है?' उन्होंने कहा–'क्या उस पापी का नाम लेते हो!' यह जो उसने कहा, तो सिपाही को क्रोध आ गया। तुम मेरे राजा साहब को पापी कहोगे–ऐसा कहकर उसने उसकी (भिखारी बने राजा की) भरपूर पिटाई की। राजा के मन में बड़ी प्रसन्नता हुई। वह मन-ही-मन कहने लगा–'तुमने बहुत-से निरपराध व्यक्ति को कष्ट दिया है, अब उसका फल भोगो।'

यह कहानी कहकर गुरु महाराज कहते थे–शरीर तो सबका एक दिन छूटेगा। आगे के लिए सोचो। केवल इस संसार के सुख में भूले हुए मत रहो। अरे! संसार का सुख ही सर्वोपरि सुख नहीं है। संसार का सुख–धन-सम्पत्ति, भोग-सामग्री, राज-पाट का सुख ही सर्वोपरि होता, तो भगवान बुद्ध राजा के पुत्र थे, क्या कमी थी उसको? लेकिन यह सुख कबतक, धन-सम्पत्ति कबतक हमारे साथ रहेगी, ऊँचे पद पर कबतक हम रहेंगे, राजा बनकर कबतक हम रहेंगे–सभी एक दिन छूटेगा। निश्चित रूप

से छूटेगा, इसे कोई रोक नहीं सकता। संत लोग कहते हैं–आगे के लिए सोचो। जो आगे के लिए सोचते हैं, वही बुद्धिमान है। केवल एक ही जीवन के सुख में भूले हुए रहनेवाले व्यक्ति को बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता। संतमत यही सिखलाता है। इस संसार को पाकर ऐसा उपाय करो कि जिस बंधन से बँधे हुए हो, इससे मुक्त हो सको। जबतक बंधन से बँधे रहोगे, तबतक दैहिक, दैविक एवं भौतिक–त्रयताप भोगना पड़ेगा। नहीं चाहते हुए भी इससे बचकर नहीं रह पाओगे। इसके लिए परमात्मा की भक्ति करो। यह भक्ति मनुष्य-शरीर में हो सकती है। अन्य शरीर में आत्म-कल्याण नहीं हो सकता; केवल इसी मनुष्य-शरीर से होने योग्य है। इसीलिए भगवान श्रीराम ने कहा था–

यहि तन कर फल विषय न भाई।

कहा–हे भाई! विषयों के सुखों को तुमने विविध शरीरों में भोगा है। कुत्ता, बिल्ली, गधा, बिच्छू, साँप–सब शरीर में भोगा है, उसे भोगकर तुम्हें सुख नहीं मिला; बल्कि दुःख ही मिला है। इसलिए इस ओर से अपने मुख को मोड़ो और अपने अन्दर के सुख की खोज करो। वह सुख कैसा? संत राधास्वामी ने कहा–'अंतर अजब बिलास।' अपने अन्दर में ऐसा सुख है, जो सुख प्राप्त होने पर फिर छूटेगा नहीं। उस सुख की प्राप्ति हो जाने पर फिर किसी सुख की चाहना नहीं होगी, किसी तरह का भय नहीं, शोक-संताप, आपदा कुछ भी नहीं रहेगी। वह सुख इसी शरीर में अपने अन्दर मिलेगा। उसकी खोज करो। इसी जीवन में यह होने योग्य है। इसलिए इसकी बड़ी महिमा बतलायी गई है। ☐

शरीररूपी मंदिर को पवित्र बनाकर रखो

पवित्र पात्र में ही पवित्र वस्तु समाती है। अपवित्र पात्र में पवित्र वस्तु नहीं रखी जाती। ठीक इसी तरह से ईश्वर की भक्ति करना चाहते हो, तो इस शरीररूपी मंदिर को पवित्र बनाकर रखो, तभी इसमें ईश्वर की भक्ति उपजेगी, तभी गुरु महाराज इसमें विराजमान होंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि सुकर्म, तन-मन्दिर की पवित्रता और ईश्वर की भक्ति (ध्यान-भजन) से ही हमारा यह और आगामी जीवन सुखमय हो सकेगा।

अपने धाम में चलो

जो शरीर धारण करता है, उसको दुःख होता ही है। असल में शरीर ही दुःख का कारण है। शरीर के बंधन में बँध जाने के कारण ही लोगों को दुःखी होना पड़ता है। संतगण कहते हैं कि इस दुःख से छूटना चाहते हो, तो अपने धाम में चलो। गुरु महाराज की वाणी में है–

सुधि करो प्यारे हो आपन देश के, जहवाँ क्लेश कछु नाहिं।

अपने धाम की सुधि करो, जहाँ किसी प्रकार का दुःख-क्लेश नहीं है, वह सुख का धाम है। कैसे उस धाम में जायेंगे? गुरु की सहायता के बिना कोई उस धाम में नहीं जा सकता।

सुमिरण की पहली कड़ी है–मानस जप

सुमिरण की पहली कड़ी है–मानस जप। मन की चंचलता को दूर करने के लिए सर्वप्रथम ईश्वरवाचक किसी वर्णात्मक शब्द का जप करना आवश्यक हो जाता है। जप करते-करते जब जप के शब्द पर मन पूर्ण रूप से एकाग्र हो जाता है, तभी साधक अपने इष्टदेव का मानस ध्यान करने में सफल हो पाता है। मानस ध्यान ऐसा हो कि अपने इष्टदेव के दर्शन अपने अन्दर हू-ब-हू हो जाएँ।

–महर्षि हरिनन्दन परमहंस

महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज की वाणी

प्रभु के दर्शन आत्म-दृष्टि से होते हैं

हमलोगों का शरीर स्थूल तत्त्वों से बना हुआ है और हमारी आँखें भी स्थूल हैं। इसलिए इन स्थूल आँखों से स्थूल शरीर को देख सकना स्वाभाविक है; किन्तु शरीरस्थ जीवात्मा सूक्ष्म है। इस कारण स्थूल नेत्रों से सूक्ष्म जीवात्मा को नहीं देखा जा सकता। जब इन स्थूल नेत्रों से शरीरस्थ जीवात्मा को नहीं देख सकते हैं, तब इस जीव के जीवनदाता परम प्रभु परमात्मा को जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं, इन आँखों से कैसे देख सकते हैं? वेद, उपनिषद् तथा संतों की वाणी में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ईश्वर–परमात्मा इन्द्रियों के द्वारा जाना नहीं जा सकता। उस परम प्रभु के दर्शन आत्म-दृष्टि से होते हैं।

स्थूल शरीर छूटने से कोई बंधन-मुक्त नहीं हो पाता

हमलोग जिस स्थूल शरीर को देखते हैं, अगर सिर्फ यही शरीर रहता, तो अवश्य ही शरीर छूटने पर दुःख से छुटकारा मिल जाता। संत लोग कहते हैं कि इस स्थूल शरीर के अन्दर सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर के अन्दर कारण शरीर है तथा कारण शरीर के अन्दर महाकारण शरीर है। इस तरह स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण–चार जड़ शरीर हैं। इन चारो जड़ शरीरों के अतिरिक्त एक और शरीर है–चेतन शरीर। साधारण मृत्यु से सिर्फ स्थूल शरीर छूटता है, बाकी सभी शरीरों में यह जीव फँसा हुआ ही रह जाता है। इसी कारण सिर्फ स्थूल शरीर छूटने से कोई बंधन-मुक्त नहीं हो पाता।

मुक्ति वह है, जिसमें जीव ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है

संतों की सद्युक्ति को प्राप्त करके सदाचार का पालन करते हुए जो लोग संलग्नता के साथ साधना करते हैं, उन्हें अपने अन्दर में दो सहारे प्राप्त होते हैं। वे सहारे हैं–ब्रह्मज्योति और ब्रह्मनाद। इन्हीं दोनों के सहारे स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य–इन पाँचो शरीरों को पार करके मोक्ष लाभ किया जाता है। यह मोक्ष या मुक्ति जीवन-काल में ही प्राप्त होती है। अर्थात् मरने पर जो मुक्ति होती है, वह मुक्ति नहीं है। मुक्ति वह है, जिसमें जीव ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है; जैसे नमक समुद्र में घुलकर एक हो जाता है। इस तरह जब जीव उससे अन्यत्र नहीं रह पाता, तब मुक्ति होती है।

रामराज्य में पहुँचने पर कोई ताप नहीं

स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और कैवल्य–इन पाँचो शरीररूपी महलों को पार कर हम रामराज्य में पहुँचते हैं, वहीं श्रीराम विराजते हैं। उस रामराज्य में पहुँचने पर कोई ताप नहीं–न भौतिक, न दैविक और न दैहिक। वहाँ किसी प्रकार का विकार नहीं है और न मानसिक ताप है।

यह संसार अपना घर नहीं है

यह संसार अपना घर नहीं है; परमात्मा का धाम अपना घर है। शरीर और संसार के बंधन में पड़कर अपने देश को, अपने धाम को भूल गये हैं; अपने आपको भूल गये हैं। हम जबतक भूले रहेंगे, तबतक दुःख की हालत में रहेंगे। जो इस संसार में आते हैं, वे भूल-भुलैया में पड़ जाते हैं। भूल-भुलैया में पड़कर सबको दुःख उठाना पड़ता है।

जो दान नहीं करते, वे दरिद्र, रोगी, मूर्ख तथा सदा दूसरों के सेवक होकर दुःख के ही भागी होते हैं।

–महर्षि सारस्वत मुनि

मन और वाणी का संयम करे

—भगवान बुद्ध

आलसी प्रज्ञा के मार्ग को नहीं पाता—जो उद्योग करने के समय उद्योग न करनेवाला, युवा और बली होकर भी आलस्य से युक्त होता है, जिसने उच्च आकांक्षाओं को छोड़ दिया है और जो कुसीदी (=दीर्घसूत्री) है, वह आलसी प्रज्ञा के मार्ग को नहीं प्राप्त करता।

तीनों कर्म पंथों को शुद्ध करे—वाणी का संयम करे, मन का संयम करे और शरीर से कोई पाप न करे। इन तीनों कर्म पंथों को शुद्ध करे। बुद्ध (=ऋषि) के बताये मार्ग का अनुसरण करे।

प्रज्ञा-वृद्धि में लगे—योगाभ्यास से प्रज्ञा उत्पन्न होती है और उसके अभाव से उसका क्षय होता है। उन्नति और विनाश—इन दो भिन्न मार्गों को जान अपने को ऐसा लगाये, जिससे प्रज्ञा की वृद्धि हो।

वन काटो, वृक्ष नहीं—भिक्षुओ! वन को काटो, वृक्ष को मत; वन से भय उत्पन्न होता है। वन और झाड़ को काटकर वन-रहित हो जाओ। जबतक अणुमात्र भी स्त्रियों में पुरुष की कामना नहीं खंडित रहती है, तबतक दूध पीनेवाला बछड़ा जैसे माता में आबद्ध रहता है, वैसे ही वह पुरुष बँधा रहता है।

मूर्ख विघ्न नहीं बूझता—यहाँ वर्षा में बसूँगा, यहाँ हेमन्त और ग्रीष्म में, मूर्ख इस प्रकार सोचता है; किन्तु (अपने जीवन के) विघ्न को नहीं बूझता है।

आसक्त को मौत ले जाती है—सोये गाँव को जैसे बड़ी बाढ़ बहा ले जाय, वैसे ही पुत्र और पशु में लिप्त आसक्त पुरुष को मौत ले जाती है।

निर्वाण-मार्ग को साफ करे—पुत्र रक्षा नहीं कर सकते, न पिता, न बंधु लोग ही, जब मृत्यु आती है, तो जातिवाले रक्षक नहीं हो सकते। इस बात को जानकर पंडित पुरुष शीलवान हो, निर्वाण की ओर ले जानेवाले मार्ग को शीघ्र ही साफ करे।

आलसी बार-बार गर्भ में पड़ता है—आलसी, बहुत खानेवाला, निंद्रालु, करवट बदल-बदलकर सोनेवाला, खिला-पिलाकर पुष्ट किये मोटे सूअर की तरह मन्द बार-बार गर्भ में पड़ता है।

अप्रमाद में रत होओ—अप्रमाद में रत होओ, अपने चित्त की रक्षा करो। पंक में फँसे हाथी की तरह इस कठिन संसार से अपना उद्धार करो।

अकेला विहार करे—यदि साथ विचरण करनेवाले अनुकूल पण्डित मित्र मिल जाये, तो सभी विघ्नों को दूर कर उसके साथ स्मृतिमान और प्रसन्न होकर विहार करे।

यदि साथ विचरण करनेवाला अनुकूल पण्डित मित्र न मिले, तो राजा की भाँति पराजित राष्ट्र को छोड़—हस्तिराज के समान अकेला विचरण करे। अकेला रहना उत्तम है। मूर्ख के साथ मित्रता अच्छी नहीं। अकेला विचरे, पाप न करे। हस्तिराज की तरह अनुत्सुक होकर रहे।

माता-पिता की सेवा सुखकर है—काम पड़ने पर मित्रों का होना सुखकर है। जो मिले उससे सन्तुष्ट रहना सुख है। मृत्यु के उपरान्त पुण्य सुख है। सभी दुःखों का प्रहाण सुख है। संसार में माता और पिता की सेवा सुखकर है। श्रवणभाव (=संन्यास) सुखकर है और ब्राह्मणपन (=निष्पाप होना) सुखकर है। वृद्धावस्था तक शील का पालन सुखकर है, स्थिर श्रद्धा का होना सुखकर है। ज्ञान का लाभ करना सुखकर है। पापों का न करना सुखकर है।

जो अपने प्रिय सम्बन्धी को भगवद्भक्ति का उपेदश देकर मृत्यु की फाँसी से नहीं छुड़ा देता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है।

—भगवान ऋषभदेव

मोक्ष के लक्षण

–समर्थ स्वामी रामदासजी महाराज

पहले श्रोताओं ने प्रश्न किया था कि मोक्ष कितने दिनों में मिलता है। इसकी कथा श्रोता लोग ध्यान देकर सुनें। यहाँ यह बतलाया जाता है कि मोक्ष को कैसे जानना चाहिए, मोक्ष किसे कहना चाहिए और सत्संग से मोक्ष कैसे प्राप्त होता है। बँधे हुए को बद्ध और खुले हुए को मुक्त कहते हैं। अब सुनिये कि सत्संग से मोक्ष कैसे मिलता है। प्राणी संकल्पों और जीवत्व से बद्ध होता है, पर साधु लोग उसे सारासार का विचार बतलाकर मुक्त करते हैं। मनुष्य को यह दृढ़ धारणा किये हुए अनेक कल्प बीत जाते हैं कि–"मैं जीव हूँ"। और इसीलिए प्राणी देहबुद्धि से बद्ध हो जाता है। जिसकी यह दृढ़ कल्पना हो गई हो कि "मैं जीव हूँ और बंधन से बँधा हुआ हूँ; मेरा जन्म भी होता है और मरण भी। अब मैं अपने किये हुए कर्म का फल भोगूँगा। पापों का फल दुःख और पुण्यों का फल सुख है और दोनों के फल अवश्य भोगने पड़ते हैं। न तो उनका भोग ही छूटता है और न गर्भवास का अन्त ही होता है।" उसी को बद्ध समझना चाहिए। जिस प्रकार रेशम का कीड़ा स्वयं ही अपने आपको बाँधकर मरता है, उसी प्रकार प्राणी भी जीवत्व के अभिमान से स्वयं ही बँधा रहता है। अज्ञानी ईश्वर को बिना जाने हुए कहता कि मेरा जन्म और मरण कभी छूट ही नहीं सकता। अब मैं कुछ दान करूँ, जो अगले जन्म में सहारा देगा और मैं सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकूँगा। मैंने पूर्वजन्म में दान नहीं किया, इसलिए इस जन्म में दरिद्र हुआ हूँ। पर अब मुझे अवश्य कुछ दानादि करना चाहिए। यही समझकर वह कुछ पुराने कपड़े और ताँबे का एक सिक्का दान करके कहता है कि अब अगले जन्म में मुझे इसका करोड़ गुणा मिलेगा, इस तरह की वह आशा करता है। धेली, सूका दान किया, अतिथि को टुकड़ा डाल दिया और समझ लिया कि मैंने अपने लिए इसका करोड़ गुणा जमा कर लिया। वही मैं अगले जन्म में मजे से खाऊँगा। बस इसी प्रकार प्राणियों की वासना जन्म-कर्म में उलझी रहती है।

जो यह समझता हो कि इस जन्म में मैं जो कुछ दूँगा, वह अगले जन्म में पाऊँगा, उसे अज्ञान और बद्ध समझना चाहिए। अनेक जन्मों के बाद इस नर-देह की प्राप्ति होती है और इस शरीर से भी यदि ज्ञान के द्वारा सद्गति न प्राप्त हो, तो फिर गर्भवास का कभी अन्त नहीं होता। और फिर यह भी नहीं होता कि गर्भवास नर-देह में ही हो। फिर उसे बार-बार नीच योनियों का ही भोग करना पड़ता है। अनेक शास्त्रों में और बहुत-से लोगों ने यही निश्चय किया है कि इस संसार में नर-देह परम दुर्लभ है। भागवत में व्यासजी ने कहा है कि–जब पाप और पुण्य दोनों बराबर होते हैं, तभी नर-देह मिलता है अन्यथा नहीं मिलता। यथा–

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥

अर्थात् परम दुर्लभ नर-देह रूपी दृढ़ नौका, गुरु-रूपी कर्णधार और ईश्वर-कृपा रूपी अनुकूल वायु पाकर भी जो प्राणी इस भव-सागर से पार न हो, उसे आत्मघातक कहना चाहिए। ज्ञान न होने के कारण ही जीव को जन्म और मृत्यु की चौरासी लाख योनियाँ भोगनी पड़ती हैं। इस प्रकार वह मानों इतनी बार आत्महत्या करता है और इसीलिए वह आत्मघातक होता है। नर-देह में जबतक ज्ञान न हो, तबतक मरण का कभी अन्त न होता और अनेक दारुण तथा नीच योनियाँ भोगनी पड़ती हैं। ज्ञान न होने के कारण ही लोग भालू, बन्दर, कुत्ते, सूअर, घोड़े, बैल, भैंस, गधे, कौवे, मुर्गे, गीदड़, बिल्ली, गिरगिट, मेंढक और मक्खी आदि की नीच योनियाँ भोगते हैं और फिर भी मूर्ख प्राणी अगले जन्म की आशा रखता है। मन में यह विश्वास रखते हुए उसे लज्जा भी नहीं आती कि इस नर-देह को छोड़ने पर फिर मुझे यही नर-देह मिलेगा? भला, इस जन्म में वह कौन-सा ऐसा पुण्य करता है, जिससे उसे फिर यही नर देह मिलेगा? अगले जन्म की आशा रखना केवल दुराशा है। इस प्रकार मूर्ख और अज्ञान मनुष्य ऐसे संकल्पों से आप ही अपने आप बाँध लेता है और आप ही अपना शत्रु बन जाता है। कहा है–

आत्मैव आत्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः।

अर्थात्, मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु होता है। अस्तु, संतों की संगति करने से संकल्पों का इस प्रकार से बन्धन टूट जाता

है। सब चराचर जीवों का शरीर पाँचों भूतों से बनता है और प्रकृति स्वभाव से ही संसार का रूप धारण करती है। देह, अवस्था, अभिमान, स्थान, भोग, मात्रा, गुण और शक्ति आदि सब तत्त्वों के लक्षण हैं। पिंड और ब्रह्मांड की ऐसी ही रचना है। विस्तार करने से ही कल्पना बढ़ गई है और तत्त्व-ज्ञान का निर्धारण करने में अनेक मत भटक रहे हैं। उन अनेक मतों में अनेक भेद हैं और उन भेदों से विवाद बढ़ता है। पर एकता की बात केवल साधु जानते हैं। वह एकता की बात यही है कि शरीर को पंचभौतिक समझना चाहिए और उसमें मुख्य आत्मा है। शरीर का अन्त में नाश हो जाता है, इसलिए उसे आत्मा नहीं कहना चाहिए। देह अनेक तत्त्वों का समुदाय है। अन्तःकरण, प्राण, विषय, दसो इन्द्रियाँ और सूक्ष्म शरीर आदि के सम्बन्ध की सब बातें शास्त्रों में बतलाई गई हैं। सूक्ष्म शरीर का पता लगाने से मालूम होता है कि अन्तःकरण, मन, बुद्धि आदि तत्त्वों की उपाधियों से आत्मा बिल्कुल अलग है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, विराट, हिरण्य, अव्याकृत और मूल प्रकृति—ये आठ प्रकार के शरीर होते हैं। इनमें से चार देह पिंडों में और चार ब्रह्माण्ड में हैं और इनमें प्रकृति तथा पुरुष मिला देने से दस देह हो जाते हैं। यही तत्त्वों का लक्षण है और आत्मा इन सबका साक्षी है। फिर भी वह उन सबसे अलग है। कार्य, कर्ता और कारण—ये तीनों उसके दृश्य हैं।

जीव-शिव और पिंड-ब्रह्माण्ड आदि माया-अविद्या के झगड़े हैं। यदि इनका वर्णन किया जाय, तो बहुत विस्तार हो जाय। आत्मा इनसे अलग है। देखा जाय, तो आत्माएँ चार हैं। यहाँ उनके लक्षण बतलाये जाते हैं, जो अच्छी तरह ध्यान में रखने चाहिए। एक जीवात्मा, दूसरी शिवात्मा, तीसरी परमात्मा या विश्वात्मा और चौथी निर्मलात्मा। माया के कारण इनमें छोटी-बड़ी का भेद दिखाई पड़ता है, पर वस्तुतः चारो एक ही हैं। और इसका दृष्टांत यह है कि घटाकाश, मठाकाश, महदाकाश और चिदाकाश चारों मिलकर एक ही आकाश हैं। इसी प्रकार आत्मा के उक्त चारो भेद मिलकर एक ही आत्मा हैं जिस प्रकार घड़े में का आकाश घटाकाश है, उसी प्रकार पिंड या शरीर में रहनेवाला ब्रह्म का अंश जीवात्मा है। जैसे मठ में का आकाश मठाकाश है, वैसे ब्रह्माण्ड में रहनेवाला ब्रह्म का अंश जीवात्मा है। जैसे मठ के बाहर का आकाश महदाकाश है, वैसे ब्रह्माण्ड के बाहर का अंश परमात्मा है। जैसे सब उपाधियों से अलग आकाश ही चिदाकाश है, वैसे उपाधियों में अलग वह निर्मलात्मा परेश है। जिस प्रकार उपाधियों के कारण भिन्न-भिन्न ज्ञात होने पर भी आकाश अभिन्न और एक ही है, उसी प्रकार आनन्दघन आत्मा भी एक ही है। दृश्य में भीतर-बाहर सब जगह सूक्ष्मात्मा है। उसका वर्णन शेषनाग से भी नहीं हो सकता। ऐसी आत्मा के लक्षण जान लेने पर जीवत्व नहीं रह जाता। उपाधि के विचार से भिन्न-भिन्न होने पर भी वास्तव में वे सब एक ही हैं। जीवत्व के कारण प्राणी एकदेशीय होकर अहंकार के योग से जन्म धारण करता है। पर विचारपूर्वक देखने पर उसके लिए जन्म आदि कुछ भी नहीं है।

जो जन्म और मृत्यु से छूट जाय, समझ लेना चाहिए कि उसका मोक्ष हो गया। तत्त्वों को ढूँढ़ने से ही वास्तविक वस्तु मिल जाती है। महाकाव्य 'सोऽहं' का अर्थ है—स्वयं हम भी वही वस्तु हैं और साधु लोग ही इसका ठीक-ठीक अर्थ बतलाते हैं। ज्यों ही साधुओं का अनुग्रह होता है, त्यों ही मोक्ष हो जाता है। आत्मा के लिए तो कोई बन्धन है ही नहीं। इस प्रकार आशंका मिट जाती है, सन्देह-वृत्ति दूर हो जाती है और संतों की संगति से तत्काल मोक्ष मिलता है। जैसे स्वप्न में बँधा हुआ आदमी जगाने पर मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान होने पर प्राणी का मोक्ष हो जाता है। अज्ञान रूपी निशा का अन्त होने पर संकल्प-सम्बंधी दुःख नष्ट हो जाते हैं और तत्काल मोक्ष हो जाता है। स्वप्न का बंधन तोड़ने के लिए केवल जागृति की आवश्यकता होती है और किसी साधन से काम नहीं चलता। इसी प्रकार संकल्प से बँधे हुए जीव के लिए मुक्त होने का इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि उसमें ज्ञान या विवेक उत्पन्न हो। बिना विवेक के और जो उपाय होंगे, वे सब व्यर्थ और दुःखदायक होंगे और विवेक द्वारा देखने पर सिद्ध हो जायेगा कि हम स्वयं आत्मा ही है। आत्मा न तो बद्ध है और न मुक्त उसके लिए न जन्म है और न मृत्यु। ❐

अंधा वह नहीं, जिसको आँख नहीं है। अंधा वह है, जो अपना दोष छिपाता है। —महात्मा गाँधी

निरन्तर सत्संग करना चाहिए

–श्रीरामकृष्ण परमहंसजी महाराज

ईश्वर-प्राप्ति हो–ऐसी जिसकी इच्छा है, उसको निरन्तर सत्संग करना चाहिए। संसारी मनुष्य सदा से व्याधिग्रस्त हैं। इस व्याधि को दूर करने के लिए साधुओं का ही विचार ग्रहण करना चाहिये। साधु जो कहते हैं, उसे सुनकर ही कार्यसिद्धि नहीं हो सकती; अपितु जैसा वे कहें, वैसा करना चाहिए। औषधि पेट में जानी चाहिए और कठिन पथ्य का पालन करना चाहिए।

आकाश में रात्रि के समय बहुत-से तारे दिखलाई पड़ते हैं; परन्तु सूर्योदय होने पर वे अदृश्य हो जाते हैं; इससे यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि दिन के समय तारे नहीं हैं। उसी प्रकार मनुष्यो! माया-जाल में फँसने के कारण यदि परमात्मा न दिखलायी पड़े, तो मत कहो कि परमेश्वर नहीं है।

पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा एक बार जब सोना बन जाता है, तब उसे चाहे जमीन में गाड़ दो अथवा कतवार में फेंक दो, वह सोना ही बना रहता है, फिर लोहा नहीं होता; उसी प्रकार सर्वशक्तिमान परमात्मा के चरण-स्पर्श से जिसका हृदय एक बार पवित्र हो जाता है, उसका फिर कुछ नहीं बिगड़ सकता, चाहे वह संसार के कोलाहल में रहे अथवा जंगल में एकान्त वास करे।

पारस पत्थर के स्पर्श से लोहे की तलवार सोने की हो जाती है और यद्यपि उसकी सूरत वैसी ही रहती है, तथापि लोहे की तलवार की तरह उससे लोगों को हानि नहीं पहुँच सकती। इसी प्रकार ईश्वर के चरण-स्पर्श से जिसका हृदय पवित्र हो जाता है, उसकी सूरत-शकल तो वैसी ही रहती है; किन्तु उससे दूसरों को हानि नहीं पहुँच सकती।

समुद्र तल में स्थित चुम्बक की चट्टान समुद्र के ऊपर चलनेवाले जहाजों को अपनी ओर खींच लेती है, उसकी कीलें निकाल डालती है, सब पटरों को अलग-अलग कर देती है और जहाज को समुद्र में डुबो देती है। इसी प्रकार जब मनुष्य को आत्मज्ञान हो जाता है, जब वह अपने को ही समान रूप से विश्वभर में देखने लगता है, तब उसका व्यक्तित्व और स्वार्थ एक क्षण में नष्ट हो जाते हैं और उसका जीवात्मा परमेश्वर के अगाध प्रेम-सागर में डूब जाता है।

दूध पानी में जब मिलाया जाता है, तब वह तुरंत मिल जाता है; किन्तु दूध का मक्खन निकालकर डालने से वह पानी में नहीं मिलता, बल्कि उसके ऊपर तैरने लगता है। उसी प्रकार जब जीवात्मा को ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है, तब वह अनेक बद्ध प्राणियों के बीच में निरन्तर रहता हुआ भी बुरे संस्कारों से प्रभावित नहीं हो सकता।

नयी उम्र की तरुणी को जबतक बच्चा नहीं होता, तबतक वह गृहकार्य में निमग्न रहती है; किन्तु बच्चा हो जाने पर गृहकार्यों से वह धीरे-धीरे बेपरवाह होती जाती है और बच्चे की ओर वह अधिक ध्यान देती है। दिनभर उसे बड़े प्रेम के साथ चूमती, चाटती और प्यार करती है। इसी प्रकार मनुष्य अज्ञान की दशा में संसार के सब कार्यों में लगा रहता है; किन्तु ईश्वर के भजन में आनन्द पाते ही वे उसे नीरस प्रतीत होने लगते हैं और वह उनसे इच्छानुसार चलने में ही उसे अत्यन्त आनन्द मिलता है। दूसरे किसी भी काम में उसको सुख नहीं मिलता। ईश्वर-दर्शन के सुख से फिर अपने को खींच नहीं सकता।

इसमें संदेह नहीं कि यह सांसारिक जीवन उस मनुष्य के लिए बहुत भयानक है, जिसके अन्तःकरण में ईश्वर के लिए प्रेम और भक्ति न हो। श्रीचैतन्यदेव ने एक बार नित्यानन्दजी से कहा था कि 'जो मनुष्य सांसारिक विषयों का गुलाम हो गया, उसको मुक्ति नहीं मिल सकती; परन्तु जो मनुष्य परमेश्वर में श्रद्धा रखता है, उसको कुछ भय नहीं। ईश्वर-प्राप्ति हो जाने के बाद यदि मनुष्य इस संसार के सब विषयों का उपभोग करता रहे, तो उसकी कोई हानि न होगी।' चैतन्यदेव के शिष्यों में बहुतेरे संसारीजन थे; जो नाममात्र के लिये ही 'संसारी' थे। ❑

ईश्वर में विश्वास करो

–स्वामी रामतीर्थजी महाराज

हे सत्य के जिज्ञासुओ! राम तुमको विश्वास दिलाता है कि यदि तुम आत्मिक परिश्रम में रात-दिन लगे रहोगे, तो तुम्हारी शारीरिक आवश्यकताएँ अपने-आप निवृत्त पड़ी होंगी। तुम्हें कुछ आवश्यकता नहीं कि तुम अपने असली आसन को छोड़कर चपरासी और दास लोगों के काम को अपना धर्म मान बैठो।

संसार में नियम है कि ज्यों-ज्यों मनुष्य का पद ऊँचा होता है, शारीरिक श्रम और स्थूल (मोटे) काम से उपरामता मिलती जाती है। जैसे जज इस प्रकार का कोई काम नहीं करता, वरं जज की उपस्थिति से ही सब काम पड़े होते हैं; जज का साक्षी होना ही चपरासियों, मुकदमेबाजों और अरजीनवीसों इत्यादि को हलचल में डाल देता है, वैसे ही कर्त्ता-भोक्ता की पूँछ को उतारकर सच्चाई के उन्माद में मग्न और मस्त की साक्षी-रूप स्थिति का होना ही काम-धंधे को पड़ा चलाता है। जिस साक्षी के भय से चन्द्र-सूर्य प्रकाश करते हैं, जिसके भय से नदियाँ बहती हैं, जिसकी आशंका से वायु चलती है, ऐसे साक्षी को कामना औरा चिन्ता से क्या प्रयोजन।

साहस से काम लो। माया कुछ वस्तु ही नहीं। जरा-से पत्ते की ओट में पहाड़ को छिपा रहे हो। जब साहस का समुद्र ज्वार पर आता है, तो कौन-सा हिमालय है, जिसको कूड़ा-कर्कट की तरह बहाकर आगे नहीं ले जा सकता। वह कौन-सा समुद्र है, जिसे तुम नहीं सुखा सकते। वह कौन-सा सूर्य है, जिसे परमाणु नहीं बना सकते?

वह कौन-सा उकदा है, जो वा हो नहीं सकता।
हिम्मत करे इनसान, तो क्या हो नहीं सकता॥

जहाँ पर सत्, प्रेम और नारायण का निवास है, वहाँ शोक, मोह, दुःख, दर्द आदि का क्या काम? क्या राजा के खेमे के सामने कोई लुंडी-बुच्ची फटक सकती है? सूर्य जिस समय उदय हो जाता है, तो कोई भी सोया नहीं रहता। पशु की भी आँखें खुल जाती हैं। नदियाँ जो बर्फ की चादरें ओढ़े पड़ी थीं, उन चादरों को फेंककर चल पड़ती हैं। इसी प्रकार सूर्य का सूर्य आत्मदेव जब आपके हृदय में निवास करता है, तो वहाँ शोक, मोह और दुःख कैसे ठहर सकते हैं? कभी नहीं, कदापि नहीं। दीपक जल पड़ने से पतंगे आप-ही-आप उसके आस-पास आने शुरू हो जाते हैं। चश्मा जहाँ वह निकलता है, प्यास बुझानेवाले वहाँ स्वयं जाने लग पड़ते हैं। फूल जहाँ खिल पड़ा, भौंरे आप-ही-आप उधर खिंचकर चले आते हैं। इसी प्रकार जिस देश में धर्म (ईश्वर का नाम) रोशन हो जाता है, तो संसार के सर्वोत्तम पदार्थ, वैभव आप ही खिंचे हुए उस देश में चले आते हैं। यही कुदरत का कानून है, यही प्रकृति का नियम है।

सफलतापूर्वक जीवित रहने का रहस्य है अपना हृदय मातृवत् बना लेना; क्योंकि माता को तो अपने सभी बच्चे, छोटे या बड़े, प्यारे लगते हैं। अपने हृदय में विश्वास की अग्नि को प्रज्वलित रखे बिना, ज्ञान की मशाल जलाये बिना आप कोई भी काम पूरा नहीं कर सकते, एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। जिस समय सब लोग तुम्हारी प्रशंसा करेंगे, वह समय तुम्हारे रोने का होगा; क्योंकि इसी प्रकार झूठे पैगम्बरों के पिताओं ने उनकी प्रशंसा की थी।

धन्य हैं वे लोग, जो समाचार-पत्र नहीं पढ़ते; क्योंकि उनको प्रकृति के दर्शन होंगे और फिर प्रकृति के द्वारा पुरुष के दर्शन होंगे। प्रार्थना करना कुछ शब्दों का दुहराना नहीं है। प्रार्थना का अर्थ है परमात्मा का मनन और अनुभव करना। जितना अधिक आपका हृदय सौन्दर्य के साथ एक स्वर होकर धड़कता है, उतना ही अधिक आपको यह भान होगा कि समस्त प्रकृति भर में आप ही अकेले साँस ले रहे हैं।

लोग तथा अन्य वस्तुएँ तभी तक हमें

प्यारी लगती हैं, जबतक वे हमारा स्वार्थ सिद्ध करती हैं, हमारा काम निकालती हैं। जिस क्षण हमारे स्वार्थ के सिद्ध होने में गड़बड़ होती है, उसी क्षण हम सब कुछ त्याग देते हैं। किसी अत्यन्त एकान्त गुफा में कोई पाप करे, आप अविलम्ब यह देखकर चकित होंगे कि आपके पैर तले की घास खड़ी होकर आपके विरुद्ध साक्षी देती है। आप अविलम्ब देखेंगे कि आस-पास की दीवारों और वृक्षों में जीभ लग गई है और वे बोलते हैं। आप प्रकृति को, ईश्वर को धोखा नहीं दे सकते। यह अटल सत्य है और यही दैवी विधान है।

शक्तिशाली मुद्रा में विश्वास मत करो, ईश्वर पर भरोसा रखो। इस पदार्थ पर अथवा पर पदार्थ पर भरोसा न करो। ईश्वर में विश्वास करो। अपने स्वरूप, अपने आत्मा में विश्वास करो। जहाँ कहीं रहो, दानी के हैसियत से काम करो; भिक्षुक की हैसियत कदापि ग्रहण मत करो, जिससे आपका काम विश्वव्यापी काम हो, उसमें व्यक्तित्व की गन्ध भी न रहे।

अहंकारी मत बनो, घमण्डी मत बनो। यह कभी मत समझो कि आपकी परिच्छिन्न आत्मा किसी वस्तु का स्वामी है। सब कुछ आपकी असली आत्मा है, ईश्वर की वस्तुएँ हैं। जो व्यक्ति कल्पनाओं में निवास करता है, वह भ्रम और आधि-व्याधि के संसार में निवास करता है और चाहे वह बुद्धिमान और पण्डित ही क्यों न जान पड़े; परन्तु उसकी बुद्धिमत्ता और पाण्डित्य उस लकड़ी के लट्ठे के समान खोखले हैं, जिसे दीमक ने खा लिया हो।

जैसा आप सोचते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। अपने-आपको पापी कहो, तो अवश्य ही पापी बन जाओगे; अपने को मूर्ख कहो, तो अवश्य ही आप मूर्ख हो जाओगे। अपने को निर्बल कहा, तो इस संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो आपको बलवान बना सके। अपने सर्वशक्तित्व को अनुभव करो, तो आप सर्वशक्तिमान हो जाते हैं। अपने प्रति सच्चे बनिये और संसार की अन्य किसी बात की ओर ध्यान न दीजिये। बिना काँटे गुलाब नहीं होता, वैसे ही इस संसार में विशुद्ध भलाई भी अलभ्य है। जो पूर्णरूप से शुभ है, वह तो केवल परमात्मा है।

एक-एक करके हमें अपने सम्बन्धों को काटना होगा, बन्धनों को यहाँ तक तोड़ना पड़ेगा कि जब अन्तिम अनुग्रह के रूप में मृत्यु सामने आये, तो हम सभी अनिच्छित पदार्थों को त्यागकर विजयी हो जायँ। दैवी विधान का चक्र निर्दयतापूर्वक घूमता रहता है। जो इस विधान के अनुकूल चलता है, वह इस पर सवारी करता है; परन्तु जो अपनी इच्छा को ईश्वर-इच्छा, दैवी विधान के विरोध में अड़ाता है, वह अवश्य ही कुचला जायगा और उसे (यूनानी साहित्य में वर्णित स्वर्ग से आग चुरानेवाले) प्रोमिथियस के समान पीड़ा भोगनी पड़ेगी (जिसका मांस गिद्धों से नुचवाया गया था)।

यदि आप विषय-वासना से पथभ्रष्ट हो गये हैं, यदि आप कामुकता के दलदल में फँसे हुए हैं, तो यही समय है कि अपनी सुदृढ़ संकल्प-शक्ति को जाग्रत करके ब्रह्म भावनाओं को प्राप्त करो और उसे बनाये रखो।

तुम चाहो कि हम संसार का भी मजा लेते रहें, दुनिया के छोटे-मोटे और गंदे विषय-भोगों एवं पाशविक कामनाओं की भी तृप्ति करते रहें और साथ-ही-साथ ईश्वर साक्षात् भी कर लें, तो यह नहीं हो सकता। ❐

दुःख भोगनेवाला तो सुखी हो सकता है, पर दुःख देनेवाला कभी सुखी नहीं हो सकता है। सत्संग से मनुष्य को अपनी भूलों का ज्ञान होता है। संयम, सदाचार, स्नेह एवं सेवा—ये गुण सत्संग के बिना नहीं आते। जो हृदय कोमल, दीन और भगवान के विरह से व्याकुल है, उसी में प्रभु का निवास है। पेट में अन्न न हो, तो शृंगार की क्या शोभा? उसी प्रकार हरि में प्रेम न हो, तो ज्ञान की क्या शोभा? —अज्ञात

असली घर प्रभु का धाम है

–भक्तराज श्रीयादवजी महाराज

जवानी में मौज करना और बुढ़ापा आने पर माला लेकर भगवान को भजना, आम खाकर गुठली का दान करने-जैसा है, अतः जवानी से ही प्रभु की भक्ति करनी चाहिए।

धनी मनुष्य के आमने-सामने बैठने से तो साधु पुरुष के आगे बैठना अच्छा है। भक्तजन तो भगवान के स्मरण-कीर्तन को ही अपनी आजीविका समझते हैं।

बबूल के पेड़ के नीचे बैठने से काँटा लगता ही है, वैसे ही दुष्टजनों की संगति से दुःख होना अवश्यम्भावी है।

जिस प्रकार सर्प के एक ही जहरीले दंश से मनुष्य मर जाता है, उसी प्रकार नरक में जाने के लिए एक ही पाप काफी है।

जैसे टूटे हुए नगाड़े की आवाज अच्छी नहीं होती, वैसे ही अनीतिमान गुरु का बोध भी भक्त पर असर नहीं करता।

फलवाली डाल जैसे झुकी रहती है, वैसे ही गुणवान पुरुष भी नम्र बने रहते हैं।

जिसके हृदय में प्रभु का वास होता है, वहाँ 'अहं' भाव नहीं रहता; जहाँ 'अहं' भाव रहता है, वहाँ प्रभु का निवास नहीं होता।

जिन विश्वरूप भगवान की कृपा से तुम्हें धन प्राप्त हुआ है, उन्हीं की सेवा में खर्च करने में ही उसकी शोभा है।

जैसे इत्र की शीशी खोलने से सदा सुगन्ध ही आती है, वैसे ही सद्गुरु के मुख से सदा उपदेश-वाक्य ही निकला करते हैं।

जो आदमी दूसरे को कुएँ से बाहर निकालना चाहता है, उसे पहले अपने पैर मजबूत कर लेने चाहिए। इसी तरह जो गुरु बनना चाहे, उसे पहले स्वयं पूरा ज्ञानी बनना चाहिए।

जैसे नाव चारों ओर पानी से घिरी हुई रहती है, फिर भी जल उसमें प्रवेश नहीं कर सकता, उसी प्रकार संसार की घोर वासनाओं के बीच में रहते हुए भी संतजन अलिप्त रहते हैं।

मनुष्य को अपने घर पर स्नेह होता है; परन्तु पैसोंवाली तिजोरी पर उससे ज्यादा स्नेह होता है, उसी प्रकार भगवान को सारा संसार प्यारा है, पर उसमें भी जो भक्तजन हैं, वे उनको अधिक प्यारे हैं।

जिस प्रकार सूर्य के सामने जानेवाले को अपनी छाया नहीं दीखती, इसी प्रकार भगवान के सम्मुख जानेवाले को नरक का मुँह भी नहीं देखना पड़ता।

शक्ति से उपरान्त पैसे खर्च करके तीर्थयात्रा करने की अपेक्षा तो घर बैठे ही मन शुद्ध करना अधिक उत्तम तीर्थसेवन है।

सांसारिक पुरुषों को जैसे कुटुम्बियों के यहाँ जाना अच्छा लगता है, वैसे ही जब तुम्हें भगवान के मन्दिर में जाना अच्छा लगे, तभी समझना कि भक्ति का प्रारम्भ हुआ।

ईश्वर मनुष्य के लिए अवतार लेता है; परन्तु मनुष्य अपने को ईश्वर में अर्पण नहीं करता।

जैसे सब नदियाँ समुद्र की ओर जाती हैं, वैसे ही सब धर्म प्रभु का ज्ञान बतलाते हैं।

संसार तो मुसाफिर खाना है, असली घर तो प्रभु का धाम है।

जिसे घर में चोर न घुसने देना हो, उसे दीपक जलता हुआ रखना चाहिए, वैसे ही जिसे पापों से बचना हो, उसे सदा प्रभु का स्मरण करते रहना चाहिए।

अन्धे के हाथ में जैसे रोशनी दूसरों के लिए ही होती है, वैसे ही आजकल अधिकांश ज्ञानियों का ज्ञान भी दूसरों के लिए होता है।

कसाई के घर पुष्ट बना बकरा आखिर मारा ही जाता है, वैसे ही मौज-मजा उड़ानेवालों की अन्त में दुर्दशा ही होती है।

परमात्मा शरीर की सफाई से नहीं, प्रेम और भक्ति से मिलते हैं। –गुरु नानकदेव

संतमत-सार

तीनों काल योग का अभ्यास करें; जैसे पात्रों का चाहनेवाला मनुष्य पात्रों की रक्षा करता है, उसी प्रकार एकाग्रता करनेवाला इन्द्रियों के समूह को हृदयकमल (आज्ञाचक्र) में नियत करके सदैव ध्यान करे और योग से चित्त को भयभीत न करे और तद्रूप (वैसा ही) होकर उससे चलायमान न हो, वह सावधान योगी है।

–महर्षि वेदव्यास

क्रोध तो मूर्खों को ही हुआ करता है, विचारवानों को भला कैसे हो सकता है। भैया! भला, कौन किसी को मारता है; क्योंकि पुरुष स्वयं ही अपने किये का फल भोगता है। प्रियवर! वह क्रोध तो मनुष्य के अत्यन्त कष्ट से संचित यश और तप का भी प्रबल नाशक है। हे तात! इस लोक और परलोक दोनों को बिगाड़नेवाले इस क्रोध का महर्षिगण सर्वदा त्याग करते हैं, इसलिये तू इसके वशीभूत मत हो।

–महर्षि पराशर

जो द्विज लोभ से मोहित हो पावन ब्रह्मणत्व का परित्याग करके कुकर्म से जीविका चलाते हैं, वे नरकगामी होते हैं। जो नास्तिक है, जिन्होंने धर्म की मर्यादा भंग की है, जो काम-भोग के लिए उत्कण्ठित, दाम्भिक और कृतघ्न हैं, जो ब्राह्मणों को धन देने की प्रतिज्ञा करके भी नहीं देते, चुगली करते, अभिमान रखते और झूठ बोलते हैं; जिनकी बातें परस्पर विरुद्ध होती हैं; जो दूसरों का धन हड़प लेते, दूसरों पर कलंक लगाने के लिए उत्सुक रहते और परायी सम्पत्ति देखकर जलते हैं, वे नरक में जाते हैं। जो मनुष्य सदा प्राणियों के प्राण लेने में लगे रहते, परायी निन्दा में प्रवृत्त होते, कुएँ, बगीचे और पोखर को दूषित करते; सरोवरों को नष्ट-भ्रष्ट करते तथा शिशुओं, भृत्यों और अतिथियों को भोजन दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं; जिन्होंने पितृयाग (श्राद्ध) और देवयाग (यज्ञ) का त्याग कर दिया है, जो संन्यास तथा अपने रहने के आश्रम को कलंकित करते हैं और मित्रों पर लांछन लगाते हैं, वे सब-के-सब नरकगामी होते हैं।

–महर्षि जैमिनि

जैसे लकड़ी अपने ही भीतर से प्रकट हुई आग के द्वारा जलकर नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार जिसका मन वश में नहीं हुआ, वह पुरुष अपने साथ ही पैदा हुई लोभवृत्ति (तृष्णा) से नाश को प्राप्त होता है। जैसे फूलों की गन्ध अपने सम्पर्क में आने पर वस्त्र, जल, तिल (तैल) और भूमि को भी सुवासित कर देती है, उसी प्रकार मनुष्य में संसर्गजनित गुण आ जाते हैं। जिनकी विद्या, कुल और कर्म–ये तीनों शुद्ध हों, उन साधु पुरुषों की सेवा में रहें। उनके साथ का उठना-बैठना शास्त्रों के स्वाध्याय से भी श्रेष्ठतर है।

–महर्षि वैशम्पायन

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्यपान एवं मद आदि, माया, मात्सर्य, चुगली, अविवेक, अविचार, अहंकार, स्वच्छन्दता, चपलता, लोलुपता, आयास, प्रमाद, द्रोह, दुस्साहस, आलस्य, दीर्घसूत्रता, परस्त्रीगमन, अत्यधिक आहार, सर्वथा आहार का त्याग, शोक तथा चोरी इत्यादि दोषों को त्यागकर जो घर में सदाचारपूर्वक रहता है, वह मनुष्य इस भूमिका, देश का तथा नगर का भूषण है। वह श्रीमान्, विद्वान् तथा कुलीन है और वही सब पुरुषों से श्रेष्ठ है। उसी के द्वारा सब तीर्थों का स्नान नित्य सम्पन्न होता है।

–महर्षि सारस्वत मुनि

सब दानों में अन्न-दान को उत्तम माना गया है। वह सबको प्रसन्न करनेवाला, पुण्यजनक तथा बल और पुष्टि को बढ़ानेवाला है। तीनों लोकों में अन्न-दान के समान दूसरा कोई दान नहीं है। अन्न से ही प्राणी उत्पन्न होते और अन्न का अभाव होने पर मर जाते हैं।

–महर्षि मार्कण्डेय

सम्पादकीय

भारतवर्ष में आदिकाल से संत-महात्माओं की अपनी विशिष्ट परम्परा रही है। प्रत्येक कालखण्ड में इस प्रकार की दिव्य आत्माओं ने जन सामान्य का मार्ग-दर्शन कर समाज में आई कुरीतियों को दूर करने में अपना योगदान किया है तथा दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों से परित्राण हेतु लोगों को धार्मिक जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया है। इसी परम्परा में पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज भी हुए हैं।

महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी का जन्म २३ मार्च, १९३४ ई० में बिहार राज्यान्तर्गत वर्तमान सुपौल जिला के मचहा ग्राम में हुआ था। ये बचपन से ही बड़ी तीक्ष्ण बुद्धि एवं विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा जन्मभूमि मचहा के प्राथमिक विद्यालय में हुई। तत्पश्चात् आपका नामांकन १९४९ ई० में मध्य विद्यालय डफरखा (त्रिवेणीगंज) में कराया गया। उन दिनों मध्य विद्यालय में सातवीं श्रेणी तक की पढ़ाई होती थी। बोर्ड परीक्षा में आपने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्णता प्राप्त की। सन् १९५१ ई० में आपका नामांकन उच्च विद्यालय, त्रिवेणीगंज के अष्टम वर्ग में कराया गया।

मैट्रिक की जाँच परीक्षा १९५४ ई० में सम्मिलित हो, प्रथम श्रेणी अंक प्राप्त कर अपनी लक्ष्य प्राप्ति के लिए त्रिवेणीगंज उच्च विद्यालय से सदा के लिए निकल पड़े। प्रधानाध्यापक, शिक्षकगण, पारिवारिक सदस्य तथा ग्रामीण आपके ऐसे क्रांतिकारी निर्णय से किंकर्त्तव्यविमूढ़ थे और आप अपने संकल्प ईश्वर की प्राप्ति पर अड़े रहे।

आपने ग्रामीणों के सहयोग से सन् १९५४ ई० में एक पुस्तकालय की स्थापना की, जिनका नाम 'महर्षि मेँहीं पुस्तकालय' मचहा रखा। संत सद्गुरु महर्षि मेँहीं परमहंसजी महाराज का आशीर्वाद भी मिल गया। आप सन् १९५४ ई० से १९५७ ई० तक पुस्तकालय में ही निवास करते रहे। मोह-माया की साक्षात् प्रतिमा माता श्रीसुखिया देवी नित्य भोजन पहुँचाने पुस्तकालय पधारने लगी और घर-गृहस्थी का पाठ पढ़ाती रही, पर आपके हृदय पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। माँ की प्यारी-प्यारी बातों को आपने अपनी स्नेहिल वाणियों में घुले विलक्षण तर्कों से टालते रहे।

पुस्तकालय में सर्वाधिक 'महर्षि मेँहीं-रचित' ग्रंथ थे। सद्गुरु महर्षि मेँहीं परमहंसजी महाराज के ग्रंथों का नियमित पाठ करना आप अपना परम धर्म समझते थे। इसीलिए आपपर आध्यात्मिक रंग गहराया। मोती बाबा के सत्संग में भी सम्मिलित होने का आपको स्वर्णिम अवसर मिलता रहा। इन दोनों संयोगों ने आपको अपने लक्ष्य तक पहुँचाने में पर्याप्त अवसर प्रदान किया।

सद्गुरु महर्षि मेँहीं परमहंसजी महाराज शिष्य-स्नेहवश सन् १९५७ में कृपापूर्वक मचहा पधारे। तीन दिनों तक उनके प्रवचनों का अमृत-वर्षण होता रहा। श्रद्धापूर्वक आप उनके अति समीप बैठे रहते और एकाग्रचित से उनके उपदेशों को हृदयंगम करते थे। आपकी मुद्रा पर महर्षिजी का भी विहंगम कृपा दृष्टिपात होता रहता था। एक समर्पित शिष्य की मनोस्थिति का आभास सद्गुरु को क्षण भर में मिल जाता है। अन्तिम दिन गुरु महाराज ने अपने प्रवचन में कहा–"जो वैरागी जीवन बिताना चाहता है तथा अलगी काम नहीं करना चाहता, वह मेरे साथ आ सकता है।" आपके मन में यही था कि गुरु महाराज साथ रख लेते, तो बड़ा अच्छा होता। आपकी आवाज को गुरु महाराज सुन लिये थे। रात के लगभग ढाई बजे आप वहाँ पहुँचे, जहाँ महर्षि मेँहीं परमहंसजी महाराज के विश्राम का सुप्रबन्ध किया गया था। वहाँ आपने देखा कि भूपलाल बाबा और संतसेवी बाबा ने छोटी चौकी लगाकर, उसपर आसनी बिछाकर बालटी में पानी भरकर रख दिया। गुरु महाराज ने दोनों से कहा–स्नान भी करूँगा; क्योंकि सवेरे जाना है। पुनः गुरु महाराज ने कहा–"आप दोनों यहाँ से चले जाएँ।" उसके बाद आप वहाँ पहुँचकर खड़े हो गये।

शौचादि कर्म से निवृत्त हो मुँह धोते हुए ज्यों ही सद्गुरु महाराज ने अपने पग-तल में एक निरीह युवक पर दृष्टिपात किया, वे विस्मित हो गए और कृपापूर्वक पूछा–'कौन हो तुम?'

आपने कहा–'हरिनन्दन!' पुनः गुरु महाराज ने पूछा–'कहाँ आए हो?' आप बोले–'हुजूर! सेवा में साथ रख लेते, तो अच्छा होता।' गुरुदेव ने पिता

से आदेश लेने की आज्ञा दी। तत्क्षण आप पिताजी के पास पहुँचे। पिताजी चौकी पर लेटे हुए थे। केवल चादर से मुँह, हाथ और शरीर को ढक लिये थे। आपने पैर छूकर पिताजी को प्रणाम किया। पिताजी ने मुँह से चादर हटाकर देखा और कुछ नहीं कहा। पिताजी ने मन-ही-मन सोचा कि यह तीन साल से घर नहीं आता था, आज क्या बात है, जो घर आया है। आपने गुरु महाराज के साथ जाने के लिए तीन बार आदेश माँगा; लेकिन पिताजी ने कुछ नहीं कहा। आपने कहा–'अगर आदेश नहीं दीजिएगा, तो मैं कहीं भाग जाऊँगा।' पिताजी ने सोचा कि अगर मैं आदेश नहीं दूँगा, तो यह कहीं बाहर भाग जाएगा। यदि आदेश दे देता हूँ, तो यह गुरु महाराज के पास ही रहेगा। पिताजी ने अंततः आदेश दे ही दिया। आप गुरु महाराज के पास पहुँचे और बोले कि मैंने पिताजी से आदेश ले लिया है। फिर गुरुदेव ने आपके पिताश्री को बुलाया और उनसे पूछा–'आप इनको जाने कहते हैं?' पिताजी ने कहा–'हाँ हुजूर!' इसपर गुरुदेव की स्वीकृति भी आपको प्राप्त हो गई। गुरुदेव बैलगाड़ी से सुखासन सत्संग-कार्यक्रम में भाग लेने चले गए। आपको पुस्तकालय एवं सत्संग-कार्यक्रम का हिसाब चुकता कर पास आने का आदेश मिला। सारा हिसाब करके गुरु महाराज के पास प्रस्थान करने से पहले आप अपने दरवाजे पर पिता से विदा लेने गये। पिताजी चौकी पर लेटे हुए थे, आपके बड़े भाई दरोगी यादव बोले–'आज पिताजी देर तक क्यों सोये हैं?' पिताजी बोले–'हरिनन्दन अब यहाँ नहीं रहेंगे, गुरु महाराज के साथ चले जायेंगे।' यह कहकर रोने लगे। वज्र-सा कठोर पिता का हृदय पुत्र-वियोग में रो रहा है। माता का वात्सल्य फूट पड़ा। माता एवं बहनें भी रोने लगीं। जिस माँ ने बहुत लाड़-प्यार से आपको पाला-पोसा था, कभी कोई तकलीफ नहीं होने दिया था। वह माँ आज आपके गृहत्याग से काफी दुःखी है। माता और बहनें रो रही हैं। आप हिमालय की तरह अडिग हो अपने गंतव्य पथ पर जाने के लिए तैयार हैं। आखिर सबको रोते-बिलखते पूरे परिवार को छोड़ आप अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सदा के लिए घर से विदा हो गये। घर से पैदल चलकर आप सुखासन गुरु महाराज के पास आ गये। १९५७ ई० से जून १९८६ ई० तक सद्गुरु की सेवा में छाया की भाँति रहे।

उपदेश–

सदाचारी व्यक्ति जिस वंश में, जिस जाति में, जिस गाँव में या देश में उत्पन्न होते हैं, उनकी मर्यादा बहुत बढ़ जाती है। उस वंश, जाति, गाँव या देश की भी कीर्ति चारो तरफ फैल जाती है।

सदाचारी व्यक्ति इन्द्रिय-लोलुप तथा स्वार्थी नहीं होते। अगर राष्ट्र में ऐसे लोगों की संख्या अधिक हो जाएँ, तो वे परस्पर एक-दूसरे को सुख पहुँचानेवाले हो जाएँगे। सदाचार का पालन तथा ईश्वर की भक्ति; दोनों का एक दूसरे से प्रगाढ़ सम्बन्ध है। सदाचार पालन किये बिना ईश्वर की भक्ति नहीं हो सकती और ईश्वर की भक्ति के बिना सदाचार का पालन करने में भी कोई व्यक्ति पूर्णरूप से सफल नहीं हो सकता।

ईश्वर–परमात्मा की भक्ति अत्यन्त पवित्र कार्य है। इस पवित्रतम कार्य को करनेवालों का मन बहुत पवित्र होना चाहिए, तभी वे इस कार्य को करने में सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

सांसारिक विषयों का सेवन करते-करते दुराचारी व्यक्ति का मन अत्यन्त अपवित्र हो जाता है। उस अपवित्र मन के द्वारा जो पवित्र-से-पवित्र परम प्रभु परमात्मा है, उसकी भक्ति हो सके, कदापि संभव नहीं है।

जो पाप कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसका चित्त अशान्त है, वह उस आत्म-तत्त्व (परमात्मा) का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता अर्थात् वह आत्म-दर्शन करने में सफल नहीं हो सकता।

पवित्र बर्तन (पवित्र हृदय) में सत्यतत्त्व का अँटाव होता है। 'सत्यतत्त्व' परमात्मा को कहा गया है। परमात्मस्वरूपी गुरुदेव को अपने हृदय-मंदिर में बिठाने के लिए हमारा हृदय (अन्तःकरण) पवित्र होना चाहिए। काम, क्रोधादि विकारों के कारण यह पवित्र नहीं रह पाता है। ऐसी स्थिति में वे हमारे हृदय-मन्दिर में विराजमान नहीं होंगे। ये काम, क्रोध, लोभ, मद आदि मनोविकार जीव को अधोगति में ले जाते हैं।

सुख पाने की चाहना सभी लोगों के मन में रहती है। इस चाहना की पूर्त्ति के लिए लोग विविध उपायों के द्वारा धनोपार्जन करके सुख-भोग की सामग्री एकत्र करते हैं; क्योंकि लोगों के मन में ऐसी

धारणा रहती है कि सुख की प्राप्ति धन-सम्पत्ति एवं भोग-सामग्री की उपलब्धि के बिना नहीं हो सकती। अवश्य ही धनोपार्जन की आवश्यकता नकारी नहीं जा सकती; किन्तु यह भी सत्य है कि धन-सम्पत्ति एवं भोग-सामग्री के साथ तृष्णा, भय, चिन्ता एवं शोक लगा रहता है, जिसके कारण लोगों को शान्तिमय सुख की प्राप्ति नहीं हो पाती।

बहुत अधिक सम्पत्ति या भोग-सामग्री की प्राप्ति हो जाने पर भी लोगों को सन्तुष्टि नहीं होती अर्थात् उनके मन में ऐसा कभी नहीं होता कि 'अब हमें नहीं चाहिए', बल्कि जिस तरह धधकती हुई अग्नि में घी डालने से वह बुझती नहीं और अधिक प्रज्वलित हो जाती है, ठीक उसी तरह लोगों को जितनी अधिक सम्पत्ति या भोग-सामग्री की प्राप्ति हो जाती है, उनके मन में उतनी ही अधिक पाने की चाहना बढ़ती जाती है। लोगों की चाहना या अधिक प्राप्त करने की तृष्णा की समाप्ति जीवन-भर नहीं होती।

संसार की सभी चीजें—धन-सम्पत्ति, भोग-सामग्री आदि नाशवान हैं, बिछुड़नेवाली हैं। वे प्राप्त होकर अगर किसी कारण नष्ट हो जाती हैं अथवा उनपर किसी का अधिकार हो जाता है, तो लोगों का मन शोक से अत्यन्त व्याकुल हो जाता है।

सन्तगण बतलाते हैं कि शान्ति बाहर की वस्तु नहीं है, वह अपने अन्दर की वस्तु है। धन-सम्पत्ति वा भोग-सामग्री के द्वारा उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। असल में शान्तिस्वरूप परम प्रभु परमात्मा हैं। उनके दर्शन से जीव को पूर्ण शान्ति मिलती है।

वे परम प्रभु सर्वव्यापक हैं—सब जगह विद्यमान हैं, उनसे कोई भी स्थान खाली नहीं है; किन्तु उनके दर्शन या उनकी प्राप्ति बाहर संसार में कहीं नहीं हो सकती। उनके दर्शन जब कभी होंगे, तो अपने अन्दर में और अपने तईं होंगे।

बाहर संसार में बाह्य इन्द्रियों द्वारा परमात्मा के मायिक रूप के दर्शन होते हैं। उस मायिक रूप के दर्शन से जीव का क्लेश दूर नहीं होता, दुःखों का अन्त नहीं होता। जो मन का सिमटाव कर पाते हैं, उन्हें परमात्मा की ओर जाने के लिए अपने अन्दर में मार्ग मिलता है।

अपने अन्दर के उस अद्भुत मार्ग पर चलनेवाले को परमात्मा की दो विभूतियाँ मिलती हैं—अन्तर-ज्योति और अन्तर-नाद। इन दोनों विभूतियों की उपलब्धि में साधक को अद्भुत शान्ति मिलती है; किन्तु अपने अन्दर की उस शान्ति को वही प्राप्त कर सकते हैं, जो अपने को पापकर्म से बचाकर रख पाते हैं अर्थात् जो झूठ नहीं बोलते, चोरी नहीं करते, हिंसा नहीं करते, किसी भी नशीली चीज का सेवन नहीं करते तथा व्यभिचार नहीं करते। इन पंच महापापों से अलग रहनेवाले तथा खान-पान एवं आहार-विहार में संयमित व्यक्तियों को अपने अन्दर के उस दिव्य रस की प्राप्ति हो पाती है।

सुकर्म करो। सुकर्म का फल सुखदायी होता है। यह धन-सम्पत्ति, यह भोग-सामग्री तो साथ जानेवाली नहीं है; लेकिन कर्म साथ जायेंगे। हम जो कर्म करते हैं, वे दो प्रकार के होते हैं। एक कर्म सुकर्म कहलाता है, पुण्यकर्म कहलाता है और दूसरा पापकर्म, अधार्मिक कर्म।

पुण्यकर्मों का फल सुख के रूप में प्राप्त होता है और पापकर्मों के फलस्वरूप दुःख भोगना पड़ता है। पुण्यात्मा और पापी की एक ही गति नहीं होती। पाप कर्म करनेवालों को अंतिम समय में मर्मांतक पीड़ा भोगनी पड़ती है। उनकी आसक्ति उन्हें अपनी ओर खींचती है, धन-सम्पत्ति, भोग-सामग्री का मोह उनसे नहीं छूटता, उनके प्राण आसानी से नहीं निकलते।

धन-सम्पत्ति, भोग-सामग्री तथा पद-प्रतिष्ठा में सुख होता है—प्रायः लोग ऐसा ही मानते हैं; लेकिन इनसे प्राप्त होनेवाला सुख सदा समान रूप से बना रहनेवाला नहीं है। इनके साथ शोक, मोह, भय और आपदाएँ लगी रहती हैं।

जिस सुख में शोक, मोह, भय और आपदाओं की आशंका न हो, विक्षिप्तावस्था न हो, वह परम सुख कहाँ मिलेगा? वह सुख है ईश्वर—परमात्मा के धाम में।

मनुष्य-शरीर पाने का जो परम फल है, वह यह है कि हम परमात्मा की भक्ति करें। अगर हम भक्ति कर रहे हैं, तो सच्चे अर्थों में हममें मानवता है, हम मानवोचित कार्य कर रहे हैं।

अतः संतों के बताएँ हुए मार्ग पर चलने से ही इहलोक और परलोक दोनों मंगलमय हो जाता है। ☐

पंजीयन सं0 R.N. 30868/66
रजिस्ट्रार ऑफ न्यूज पेपर (भारत सरकार)

शान्ति–सन्देश

Postal R.N./P.T.-105/2012-14
अप्रैल, २०१४ ई०

POST PAID
MASS MAILING

ईश्वर–भजन से जीवन सुखमय होगा

एक विद्या है कि पण्डितों-अध्यापकों के पास मिलती है। दूसरी विद्या होती है, जो साधु-संतों के संग में मिलती है। स्कूल-कॉलेज की विद्या में संसार के प्रबन्ध का ख्याल ज्यादे होता है। और साधु-संतों के पास जाने से जो विद्या आती है, उसमें संसार का प्रबंध तो रहता ही है; लेकिन यह भी रहता है कि शरीर छोड़ने के बाद तुम्हारी क्या हालत होगी, यह भी सोचो। संसार में रहने के लिए बहुत अच्छा प्रबंध किया। कुछ दिन वा कुछ वर्ष रहे, चले गये। कहाँ चले गये, इसका कोई ठिकाना नहीं। शरीर छोड़ने पर तुम दुःख में नहीं जाओ, इसका प्रबन्ध कर लिया, तब तो ठीक है; लेकिन नहीं किया, तो अभी तुमको कुछ करना चाहिए। जाना जरूर है; लेकिन शरीर के बाद का जीवन बहुत लम्बा है, इसका प्रबन्ध करो। संसार का प्रबन्ध करना ही है और शरीर छूटने के बाद का भी प्रबन्ध सोचो, नहीं तो अपनी बहुत बड़ी हानि करते हो। बड़ी हानि से बचो और दूसरों को भी बचाओ।

ईश्वर के भजन से जीवन सुखमय होगा। अपने को भला बनाना, ईश्वर-भजन से होगा। बहुत पढ़-लिख लिये; इससे अपनी पूरी भलाई हो, ऐसी बात नहीं। संसार में तुम अपने को सँभाल कर रखो कि तुम्हारी कोई निन्दा न करे। यदि तुम्हारा आचरण ठीक है और लोग तुम्हारी निन्दा करें, तो परवाह मत करो। और यदि तुम से उस तरह का काम हो गया है; तब जो तुमको कोई कुछ कहे, तो उसको अपना मित्र मानो। ईश्वर की ओर चलने के लिए पवित्र भाव से रहना होगा। संसार की कमाई में पाप-पुण्य का कोई विचार नहीं होता; लेकिन ईश्वर-भजन में पाप-पुण्य का विचार करके चलना होगा। कोई चाहे कि ईश्वर-भजन भी करेंगे और पाप भी करेंगे, तो उससे ईश्वर का भजन नहीं होगा। ईश्वर का भजन आजकल-आजकल कहकर मत टालो।

स्वावलम्बी जीवन बिताओ

सद्गुरु बाबा देवी साहब सबकी भलाई के वास्ते अपनी शुभकामना रखते थे। वे कहते थे–"मनुष्य को इच्छाएँ कम रखनी चाहिए। स्वावलम्बी (सेल्फ सपोर्टर) बनना चाहिए। जो अपने शारीरिक खर्च का भार दूसरों पर रखकर अपने निर्वाह में यत्नशील है, वह दूसरों का बोझ या कर्ज अपने ऊपर लेता है। उसको अपने कर्मों का भार तो विशेष रूप से रहता ही है, वह उस भार को बढ़ा देता है, जब वह दूसरों पर अपना उपर्युक्त भार रखता है।"

दूसरों से अपनी सेवा कराने का ख्याल स्वावलम्बी होने के विचार की अवहेलना कर उसे दूषित करता है। अतएव सत्संगी महाशयों को चाहिए कि वे पूज्य बाबा साहब के उपर्युक्त उपदेश को मानते हुए सांसारिक जीवन बितावें।

संत-दर्शन से पाप-नाश

सरदातप निसि ससि अपहरई। सन्त दरस जिमि पातक टरई॥

शरद ऋतु में सूर्य के ताप को रात में चन्द्रमा इस तरह हर लेता है, जैसे संत के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं। संत के दर्शन से पाप नाश हो जाते हैं; क्योंकि उनके शरीर का पवित्र सार (गर्मी) उनका दर्शन करनेवालों की देह में स्वभावतः आप से आप समाकर शुभ और निर्मल प्रभाव पहुँचाता है। उसी तरह उनके (संतों के) पवित्र उपदेशों के असर भी उनके समीप में जाकर सुननेवालों को निष्पाप कर देते हैं।

डॉ० स्वामी गुरु प्रसाद, एम०ए० (द्वय), एम०एड०, पी–एच०डी०, महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर–3 (बिहार) द्वारा संपादित एवं प्रकाशित तथा 'शान्ति-संदेश' प्रेस, महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर–3 (बिहार) में मुद्रित ।